



साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की
पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध-सार

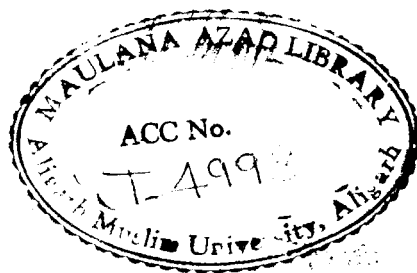
शोधार्थी:

मुफ़र्रुख़र एहतिशाम जुबैरी

हिन्दी विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

1995



20 AUG 1998

हमारे इस पी० एच-डी० के शोध प्रबन्ध का विषय है -----

"साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन" प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मूल उद्देश्य सन् 60 के बाद के लिखे गये हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में वस्तुपरक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म अन्वेषण करना रहा है ।

हमने अपने इस शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभाजित किया है---प्रथम अध्याय का शीर्षक है--"साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन" विषय का महत्व और शोध की आवश्यकता । यहाँ हमारा मूल विवेच्य विषय हिन्दी-उर्दू दोनों ही भाषाओं के विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए हिन्दी-उर्दू उपन्यासों के महत्व को रेखांकित करना रहा है । हमारा यहाँ मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाओं का समान रूप से ज्ञान प्राप्त करके दोनों के उपन्यास साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन द्वारा चिन्तन का एक नवीन मार्ग प्रशस्त करने के साथ ऐसे सुअवसर उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया जाये जिससे दोनों साहित्य अधिक समीप आ सकें । दोनों वर्गों के ही साहित्यकारों की प्रतिभा से पर्याप्त लाभ उठा सकें । जहाँ हिन्दी उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियाँ उभर कर सामने आयें, वहीं उर्दू उपन्यास साहित्य में होने वाले कला और शिल्प के नये प्रयोगों से भी हिन्दी पाठक अनभिज्ञ न रह सकें । इसी के साथ-साथ समान सामाजिक परिवेश और सामाजिक संरचना के मध्य रहते हुए भी दोनों वर्गों के लेखक की मानसिकता में समानता के साथ ही अन्तर को परिलक्षित करने का प्रयास किया है । मेरा विनम्र निवेदन है कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों की उपलब्धियाँ सीमा को परखने में प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा समीक्षा के नये आयाम के साथ ही चिन्तन के नये पथ भी प्रशस्त होंगे जिससे यह कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी होगा ।

द्वितीय अध्याय में हमने पूर्व विवेच्य युगीन हिन्दी-उर्दू उपन्यासों की परम्परा और विरासत को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। चिन्तन फलक में परिवर्तन होने के साथ ही साथ उपन्यास के स्वरूप में भी परिवर्तन होते रहे हैं और उपन्यास साहित्य युगानुरूप बदलाव के साथ विभिन्न मोड़ों से गुज़रा तथा विभिन्न दिशाओं का साक्षी बना है। वस्तुतः मानवीय सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भिक विकास-श्रृंखला की एक कड़ी का नाम ही उपन्यास है परन्तु किसी न किसी बिन्दु पर आकर उसमें एक अन्तरंग और गुणात्मक परिवर्तन आया और यह परिवर्तन इतना मौलिक था कि आज इस साहित्य विधा का अध्ययन करने के लिए उसके पूर्व रूप का अध्ययन कोई अर्थ नहीं रखता है। इस अध्याय के अन्तर्गत प्रारम्भिक उपन्यासों से लेकर स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों तक का विवेचन किया गया है। परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि उपन्यास को प्रेमचंद युग में ही जीवन के विभिन्न छाया चित्रों को चित्रित करने में सफलता मिल गई थी। परम्परा से जोड़ते हुए प्रेमचंदोत्तर युग के नवीन मूल्यों और गतिमानों की स्थापना के प्रयास को भी स्पष्ट किया गया है। साथ ही उपन्यास विधा के महत्व को भी रेखांकित किया गया है। यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि उपन्यास व्यष्टि के समष्टि और प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष के महागीत के रूप में रेखांकित हुआ और व्यक्ति और समाज के नये संश्लिष्ट रिश्तों को परत दर परत उकेरता और जीवन के सुरताल की लय पर नृत्य करता उसके आरोह अवरोह के मध्य से सर्जनात्मक मार्ग बनाता विकास के नए तोपानों अकी ओर किस प्रकार अग्रसर होता रहा है। प्रगतिशील आंदोलन के महत्वपूर्ण योगदान को भी स्पष्ट किया गया है जिसने हिन्दी-उर्दू उपन्यास साहित्य को नई दिशा प्रदान की और फ्रायड और मार्क्स की धारणाओं का प्रभाव ग्रहण करता हुआ उपन्यास साहित्य निरन्तर विकास की ओर किस प्रकार अग्रसर हुआ। अलोच्यकाल में हिन्दी उपन्यास ने जहाँ यथार्थ के नये धरातलों का स्पर्श करने का प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता पूर्व की प्रवृत्तियों भी

पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती हैं। विषय को स्पष्ट करते हुए यह बताना आवश्यक हो जाता है कि आधुनिक युग में उपन्यास जन-जीवन की आन्तरिक ऊर्जा और घेतना के ओर अर्जित रूप में साहित्यिक क्षितिज पर नवीन आयामों की सर्जना करता हुआ नये परिवेश के साथ नयी गति, नयी दिशा और नयी उपलब्धियों का साक्षी बन गया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यिक क्षितिज और बदलते परिवेश पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि संघटन और विघटन की प्रक्रियाओं के मध्य से गुजरता समाज सार्वभौमिक, वैविध्यमयी, सामूहिक और संक्रान्त दिशाओं का साक्षी बनकर साहित्य पर किस प्रकार से गंभीर प्रभाव डालता है। जीवन का जटिल यथार्थ, परिवर्तनशील सामाजिक परिवेश, युगीन परिस्थितियों, संघर्ष, विद्रोह एवं क्रान्ति की समर्थ घेतना, नवीन प्रतिमानों, संभावनाओं और नूतन सर्जनशील आयामों की शिनाख्त करके साहित्य को एक व्यापक क्षितिज प्रदान करती है। यह स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार बेतार के तार का ग्राहक यन्त्र आकाश मंडल में विचरती हुई विद्युत तरंगों को पकड़ कर उनको भाषित शब्द का आकार देता है, ठीक उसी प्रकार कवि या लेखक अपने समय के वायुमंडल में घूमते हुए विचारों को पकड़कर मुखरित कर देता है। इस तरह से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि युगीन परिवेश, तत्कालीन चिन्तन कला एवं साहित्य पर प्रत्यक्ष, गंभीर और स्पष्ट प्रभाव डालता है। हमने इस अध्याय के विषय को क्रमबद्ध रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय में "साठोत्तर हिन्दी उर्दू उपन्यास : स्थिति और गति" का गम्भीरता से विवेचन किया गया है। इस अध्याय में अस्तित्वबोध के परिपार्श्व में टूटते-जुड़ते आदमी की नियति, बनते बिगड़ते रिश्तों, मूल्यों, नई परिस्थितियों और नूतन परिवेश की आस्थाओं को स्पष्ट किया गया है। सन् 60 तक आते-आते परम्पराओं, आस्थाओं नैतिक मानदंडों और प्राचीन आधार संहिताओं में पर्याप्त परिवर्तन हो चुके थे। असन्तोष और अस्वीकार अपना सिक्का जमाते जा रहे थे। पुराने जीवनमूल्य खंडित हो चुके थे और मानवीय अहिंसा की स्वतंत्रता के नव सोपानों की खोज का कार्य प्रारम्भ

हो चुका था । मूल प्रश्न मानवीय अस्तित्व बोध और अस्मिता की सार्थकता का था । संक्रमण से प्रभावित और खण्डित व्यक्तित्व की पूर्णता का था । इसीलिए सम्बन्ध और मूल्यों के क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । इन तमाम मुद्दों पर इस अध्याय में बहुत ही बारीकी से प्रकाश डाला गया है और यह भी स्पष्ट किया गया है कि साठोत्तर उपन्यास अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों को तलाशता हुआ जिजीविषा के आन्तरिक धरातल पर बहु आयामी संघर्ष में आज भी रत है ।

पाँचवें अध्याय में "प्रमुख साठोत्तर उर्दू उपन्यास : आलोचनात्मक अध्ययन" के अन्तर्गत हमने उर्दू की सन् साठ के बाद की प्रमुख औपन्यासिक कृतियों में महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है । सन् साठ के उपरान्त उर्दू उपन्यास ने एक समर्थ और सशक्त गद्य विधा के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई । सन् 60 के बाद बदलते सामाजिक परिदृश्य, टूटते-जुड़ते आदमी की विवशता, बनते बिगड़ते रिश्ते, बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता तथा आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ परक चित्रण उर्दू उपन्यास में मिलता है । यही कारण है कि सन् 60 के बाद के उर्दू की प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ नवीन परिवेश का महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं । हमने इस अध्याय के अन्तर्गत सुमताज सुफ्तों का "अलीपुर का एली", जमील हाशमी का "तलाशे बहारा", राजेन्द्र सिंह बेदी का "एक चादर मैली सी", इन्तेज़ार हुसैन का "बस्ती", खदीजा मस्तूर का "ऑगन", अब्दुल्ला हुसैन का "उदास नस्लें", हयातुल्ला अंसारी का "लहू के फूल" और फारूख खालिद का "स्थाह आईने" का विश्लेषण किया है । इन समस्त उपन्यासों में समय के साथ-साथ समाज में किस तरह के परिवर्तन होते आये हैं इस पर बहुत ही बारीकी से चर्चा की गयी है । चूँकि यह काल भारतीय समाज का स्वतन्त्रता के बाद का सबसे अधिक परिवर्तन का काल-खण्ड है । वैसे मूलतः उपन्यास आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं के ताने बाने में किस प्रकार उलझा हुआ

है तथा जीवन में कितनी जटिलताओं से होकर गुजरना पड़ रहा है इसका पूर्ण रूप से अवलोकन किया जा सकता है ।

हमारे षष्ठ अध्याय का विषय है "प्रमुख साठोत्तर हिन्दी उपन्यास: आलोचनात्मक अध्ययन" इस ऐतिहासिक काल खण्ड में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं । इसलिए इस अध्याय में समकालीन परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास के माध्यम से समय और परिवर्तन को देखने तथा परखने का प्रयास किया गया है । इस अध्याय के अन्तर्गत हमने मुख्य रूप से मोहन राकेश का "अधरे बन्द कमरे" निर्मल वर्मा का "वे दिन" अमृत लाल सागर का "अमृत और विष", राही मासूम रजा का "आधा गाँव", शिव प्रसाद सिंह का "अलग-अलग वैतरणी", श्री लाल शुक्ल का "रागदरबारी" मन्नू भंडारी का "आपका बंटी", जगदीश चन्द्र का "धरती धन न अपना", भीष्म साहनी का "तमस" जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का "मुरदा घर" और राजकमल चौधरी का "मछली मरी हुई" पर विशेष रूप से चर्चा की है । इस काल खण्ड में और भी बहुत से महत्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जिन पर प्रकाश नहीं डाला गया है । लेकिन उन सभी महत्वपूर्ण उपन्यासों पर चर्चा अवश्य की गयी है जिनसे आज के जीवन सन्दर्भों, बदलते हुए परिवेश आदि पक्ष उद्घाटित हो सकें । मैं समझता हूँ कि इन उपन्यासों में भी वही परिवर्तन और समस्याएँ देखने को मिलती हैं जो उर्दू उपन्यासों में देखने को मिली हैं । मात्र भाषा के स्तर पर अवश्य ही भिन्नता नज़र आती है ।

हमने सातवें और अन्तिम अध्याय "उपसंहार" में इस शोध कार्य के निष्कर्षों और उपलब्धियों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है जैसा कि इस शोध प्रबन्ध का विषय है "साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन" जिसके अन्तर्गत हिन्दी-उर्दू उपन्यासों की समस्याओं और उपलब्धियों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर चुके हैं, हिन्दी-उर्दू भारत की समर्थ, सशक्त और जीवन्त भाषाएँ हैं । इन दोनों भाषाओं की अपनी समृद्ध साहित्यिक परम्पराएँ रही हैं । जीवन्त भाषा होने के कारण दोनों भाषाओं के साहित्यों की आधुनिक सर्जनात्मक विधाओं में पर्याप्त श्री वृद्धि हुई है । इसमें यह भी

दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार से परिस्थितियाँ और परिवेश का दोनों भाषाओं में समान रूप से प्रभाव पड़ा है। आधुनिक उपन्यास में जीवन की विभिन्न समस्याएँ और परिस्थितियाँ अपने रेशेरेश में मानव को आत्मीय परिचित बनाती हुई अपनी समग्रता में मानव मात्र को नए सन्दर्भ प्रदान करती हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व और समाज सापेक्ष घटनाओं के आकलन और मानवीय जोजिविषा, संघात, संघर्ष एवं टूटने बिखरने की पूर्ण कथाओं आधुनिक हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। जीवन की चतुर्मुखी छाया, मूल्यों के संक्रमण बनने-बिगड़ते रिश्ते, उनकी जटिलता, विविध मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं आर्थिक सभ्यता के अटूट गवाह के रूप में उर्दू-हिन्दी उपन्यास यथार्थ के व्यापक फलक पर मानव की अस्मिता पर लगे आधारभूत सवालियों का सार्थक जवाब खोजते हुए बदलती युगीन मानसिकता और उसके परिणामों की ओर इंगित करके में पूर्ण सफल रहे हैं। मानव चिंतन और उसके विविध आयामों को हिन्दी-उर्दू उपन्यास में एक नया स्वर प्राप्त हुआ और उसके गतिशील मानव समाज का वैविध्य उभरकर सामने आया है। चिंतन फलक में परिवर्तन होने के साथ ही साथ हिन्दी और उर्दू उपन्यासों के स्वर में भी परिवर्तन आते रहे हैं। दोनों भाषाओं का उपन्यास साहित्य युगानुरूप बदलाव के साथ विभिन्न मोड़ों से गुजरा और विभिन्न दिशाओं का साक्षी बना है। जैसाकि हम उल्लेख भी कर चुके हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात का काल कुंठा, संघात और निराशा से भरा हुआ है। जहाँ एक ओर राष्ट्र विकास पथ की ओर अग्रसर हुआ, वहीं दूसरी ओर भ्रष्टाचार, अनीति, दमन और स्वायत्तों के संघर्ष अनेक राष्ट्रव्यापी समस्याओं को जन्म दिया। सन् 60 तक आते-आते साम्प्रदायिकता की विभीषिका क्रूरतम रूप धारण कर चुकी थी और इसका प्रमुख कारण जातिवाद और धर्म को राजनीति का आधार बनाना था। प्रान्तीयता और भाषाई आन्दोलन अपने उत्कर्ष पर थे। शहरीकरण और यन्त्रीकरण की प्रक्रिया निरन्तर प्रवाहित थी। शिक्षा व्यापार, राजनीति, धर्म और संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में स्पष्ट खोजलापन परिलक्षित किया जा रहा था। इन परिवर्तनों और सामाजिक विघटन के प्रभाव से हिन्दी-उर्दू उपन्यास साहित्य भी अछूता न रह सका, फलस्वरूप उसमें जहाँ विद्रोह के नये स्वर मुखरित हुए, वहीं दूसरी ओर नवीन प्रतिमानों की स्थापना पर भी बल

दिया गया । इस प्रकार स्वातंत्रता के नूतन प्रवाह चिंतन की नयी दिशा और वैचारिकता के गवीन सोपानों ने नई परिस्थितियों और नये सामाजिक परिवेश में साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासकारों को एक नया फलक प्रदान किया ।

इस युग के हिन्दी-उर्दू दोनों ही उपन्यासकारों पर पाश्चात्य दर्शन और चिंतन का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा । यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद, मानवतावाद और व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रवृत्तियाँ इस युग में के हिन्दी-उर्दू दोनों ही उपन्यासकारों पर पाश्चात्य चिंतन का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा । यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद, मानवतावाद और व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रवृत्तियाँ इस युग के हिन्दी-उर्दू उपन्यासकारों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ रही हैं । यही कारण है कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासकार कटु यथार्थ का सामना करते हुए पलायन का रास्ता न पकड़कर संघर्ष को महत्व देते हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासकार समाज से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं और यही कारण है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में साठोत्तरी सामाजिक यथार्थ और परिवेश का जीवंत चित्रण किया है । साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में समान प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हुई हैं । तमस, आधा गाँव, अलग बैतरणी, लौटे हुए मुसाफिर, बस्ती, उदास नस्लें, लहू के फूल, आँगन, तलाशे बहारों आदि उपन्यास विभाजन और साम्प्रदायिक समस्या से ग्रस्त समाज की मनःस्थिति को हमारे सामने प्रकट करते हुए इस तथ्य पर विशेष रूप प्रकाश डालते हैं कि साम्प्रदायिक समस्या सामाजिक कम राजनीतिक अधिक है । यही कारण है इन सभी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के मूल में जाकर उस पर गहरी चोट की गई है ।

अंधेरे बन्द कमरे, वे दिन, बेधर अपने-अपने अजनबी, बैसाखियों पर टिकी इमोस्त, बस्ती, दूसरी बार, उदास नस्लें आदि उपन्यासों में उस निरर्थकता बोध, उच्च, अजनबियत को ध्वनित किया गया है, जिसने निर्मम और अमानवीय व्यक्तिवाद को जन्म दिया । अंधेरे बन्द कमरे, वे दिन, आपका बंटी, जिन्दगीनामा, मछली मरी हुई, उसका बचपन, दूसरी बार, अलीपुर का

एली, पहला और आखिरी खत, राजा गिद्ध और बस्ती आदि में यौन संबंधों में असहजता, ठण्डापन, कुण्ठा को उजागर किया है ।

रागदरबारी, महाभोज, बस्ती, आखिरी शब के हमसफर, उदास नस्लें, खुदा की बस्ती आदि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक विसंगतियाँ, विद्रूप को आत्मसात किया गया है तो एक चादर मैली सी, शब रागदरबारी, आधा गाँव, अलग-अलग चैतरणी जल टूटता हुआ, धरती धन न अपना आदि उपन्यासों में बदलते हुए ग्रामीण परिवेश में आर्थिक शोषण, सामाजिक पतन, राजनीतिक विसंगतियों और स्वार्द्धा को चित्रित किया गया है ।

निष्कर्षतः हम अन्त में कह सकते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में एक ऐसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आत्मसात किया जो सामाजिक यथार्थ उच्चतर जीवन मूल्यों, व्यक्तिगत बोध, सामाजिक वर्जनाएँ, यौन कुण्ठाएँ, आर्थिक स्वायत्तता और सार्थकता की तलाश आदि से परिभाषित करने के साथ-साथ मानव मन से जटिल संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम रहा है । निःसन्देह ये साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यास कोक्ये महान उपलब्धियाँ हैं । अतः साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यास में जीवन को निकट से देखने और परखने का सफल प्रयास किया गया है ।



साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

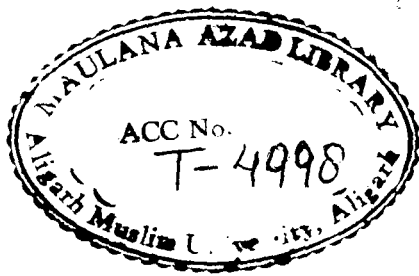
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की
पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

सोधार्थी:
मुफ़्दुख़र एहतिशाम जुबैरी

हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
1995



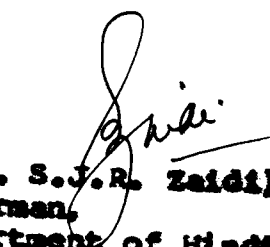
T4998



CERTIFICATE

I certify that the thesis entitled - "A comparative Study of post 60's Hindi - Urdu Novels" is the original work of Mr. M.E. Zuberi (Reader, Women's College, A.M.U. Aligarh) and suitable for submission for the award of Ph.D. Degree.

The candidate has fulfilled all the conditions as prescribed by the Academic Ordinances.


(Prof. S.J.R. Zaidi)
Chairman,
Department of Hindi, A.M.U.
Aligarh.

प्रास्ताविक

हिन्दी और उर्दू इस देश की प्रमुख भाषाएँ हैं। इनकी अपनी विकसित साहित्यिक परम्परा रही है। भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का दोनों भाषाओं के साहित्य पर समान रूप से प्रभाव पड़ा है। दोनों ही भाषाओं के कथा-साहित्य विशेषतः उपन्यास साहित्य में भारतीय सामाजिक परिवर्तन का, उसकी पूरी जटिलताओं के साथ चित्रण हुआ है। मानवीय जीवन से गहरी संलग्नता में हिन्दी-उर्दू के उपन्यासकारों को सामाजिक तरीक़ार प्रदान किये हैं। इन औपन्यस्तिक कृतियों का अध्ययन कला-सूक्ष्म एवं सामाजिक प्रतिबिम्बता, दोनों ही दृष्टियों से किया जा सकता है।

सन् 1960 तक आते-आते हिन्दी-उर्दू दोनों ही भाषाओं के उपन्यास साहित्य में न केवल प्रौढ़ता ही आ गई है बल्कि कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर विविध प्रयोग भी होने आरंभ हो गए। सन् 60 के उपरान्त हिन्दी और उर्दू के कथा साहित्य में विशेषतः भारत-विभाजन की ग़ातली, पुँजीवादी विकास के साथ-साथ सामंती मुख्य-व्यवस्था के पतन रहने से उत्पन्न हुआ अकेलापन और अजनबियत, झड़-झड़ मिली स्वाधीनता से भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों में अकाल का मोहभंग, भारत-पाक युद्ध की विभीषिका और ग़ातली, मानवीय संबंधों में रानात्मकता का निरन्तर ह्रास और लण्डापन आदि की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। मानवीय संबंधों और जीवन-सूक्ष्मों की इन जटिलताओं और गहरी ख़मक़ा में मेरा ध्यान आकर्षित किया अतथा मुझे इस विषय पर शोध करने के लिए प्रेरित किया। हिन्दी उपन्यास तो भारत में ही लिखा गया पर उर्दू का उपन्यास-साहित्य भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों में रचा गया। लगभग एक ती वृद्धभूमि में आकार ग्रहण करने वाले इन उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन इन भाषाओं के लोगों के बीच अपरिचय से उत्पन्न पूर्वाग्रहों को कुछ हद तक तोड़ने में भी अपनी भूमिका अदा कर सकता है। इस शोधकार्य के पीछे यही कारण प्रमुख रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध सात अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में विषय के महत्व और उसकी आवश्यकता पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में हिन्दी-उर्दू के उपन्यास साहित्य की परम्परा पर विचार किया गया है जो विवेच्ययुगीन उपन्यासों के मूलचरित्र के लिए अत्यंत आवश्यक है।

तृतीय अध्याय में स्वातन्त्र्योत्तर सामाजिक और साहित्यिक परिवर्तन का अध्ययन किया गया है तथा हिन्दी-उर्दू के उपन्यासों में उनके प्रभाव को भी रेखांकित किया गया है। मोटे तौर पर यह हमारे युग अध्ययन की पूर्वनीटिका है।

चतुर्थ अध्याय में साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यास की स्थिति एवं नीति का विवेचन प्रस्तुत है।

पंचम एवं छठ अध्याय में सन् 1960 के बाद निरूपित हिन्दी-उर्दू के प्रमुख उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। हिन्दी-उर्दू की प्रमुख औपन्यासिक कृतियों की कथावस्तु एवं उनमें चित्रित आचारभूत समस्याओं तथा सामाजिक परिवर्तन का वस्तुपरक अध्ययन, इन दोनों अध्यायों में प्रकाश किया गया है।

अन्तिम अध्याय में अध्ययन के निष्कर्षों को तार-रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी-उर्दू साहित्य के विद्वान अध्येता तथा कर्मिण विमानाट्यल प्रो० गेला देवी के निर्देशन में मैंने यह शोधकार्य आरम्भ किया था किन्तु कुछ पारिवारिक एवं व्यक्तिगत प्रोत्साहनों के कारण निर्धारित समय में पूर्ण न कर सका। अतः शिक्षक अभ्यर्थी के रूप में इस शोध-प्रबंध को प्रस्तुत करना पड़ रहा है। किन्तु आदरणीय मुख्य प्रो० देवी साहब ने ही इस अध्ययन की दिशा निर्धारित की है तथा मेरी शिकायतों का उचित समाधान किया है। उनके प्रति मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ।

कला-संकाय के अधिष्ठाता प्रो० के०पी० सिंह ने तद्विषय मुझे प्रेरित किया है तथा समय-समय पर मेरा उत्साहवर्धन किया है। उन्हीं की प्रेरणा से यह कार्य पूर्ण हो सका है, तदर्थ आभारी हूँ।

प्रियवर आशिक्र जली, अजय बितारिया स्व गशिभूयता
मेरे मित्र और लफुभाता समान हैं तथा उनका तहयोन मुझे भरपूर मिलता
रहा है, धन्यवाद हापित करके मैं उनका तहयोन खोना नहीं
चाहता ।

जीवन-तहयरी करार मेरे हर पल की साथी हैं
युंकि मैं उनसे अलग नहीं हूँ अतः उनके प्रति कोई औप-
चारिकता उचित नहीं । मेरे सुख-दुख, सफलता - असफलता
सभी में वे बराबर की गरीब हैं । अतः यह गीथकार्य भी
उन्हीं के लिए ।



(मुफख्खर एहतिशाम जुबेरी)

विषय-सूची
=====

प्राक्कथन	(1)
प्रथम अध्याय : "साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन"	1
विषय का महत्व और शोध आवश्यकता	
द्वितीय अध्याय: पूर्व विवेच्ययुगीन हिन्दी-उर्दू उपन्यासों की परम्परा और विरासत	7
तृतीय अध्याय: स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यिक क्षितिज और बदलते परिवेश	46
चतुर्थ अध्याय : साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यास : स्थिति और गति	71
पंचम अध्याय: प्रमुख साठोत्तर उर्दू उपन्यास : आलोचनात्मक अध्ययन	97
षष्ठ अध्याय : प्रमुख साठोत्तर हिन्दी उपन्यास : आलोचनात्मक अध्ययन	139
सप्तम अध्याय: उपसंहार	167
परिशिष्ट : संदर्भ एवं सहायक ग्रन्थ सूची	

"साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन" विषय का महत्व

और शोध की आवश्यकता :-

भारत में हिन्दी और उर्दू हिन्दुस्तानी भाषा की दो शैलियों के रूप में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई हैं । भारत के राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक परिवेश के विघटन और अन्य परिस्थितियों का दोनों पर लगभग समान रूप से प्रभाव पड़ा है । यही कारण है कि हिन्दी और उर्दू दोनों के साहित्यिक क्षितिज पर उपन्यास विषय का प्रस्फुटन लगभग एक ही समय में हुआ और दोनों साहित्यों में ही उपन्यास एक स्वतन्त्र और सशक्त विषय के रूप में उभरा । इन दोनों समानान्तर उपन्यासकारों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे पर गहन प्रभाव डालने के साथ ही साथ एक दूसरे को अन्य समृद्धि भी प्रदान की है परन्तु उर्दू और हिन्दी इन दोनों भाषाओं के उपन्यास साहित्य के तुलनात्मक दृष्टिकोण से परस्पर के असीम सार्थक प्रयत्न दृष्टिगत नहीं होते । उर्दू शैली से अनभिज्ञता भी एक इसका एक बड़ा कारण रहा है । फलस्वरूप इस क्षेत्र में तुलनात्मक दृष्टि से आशातीत कार्य अब तक नहीं हो सका है । आवश्यकता इस बात की भी थी कि हिन्दी और उर्दू इन दोनों भाषाओं का समान रूप से ज्ञान प्राप्त करके दोनों साहित्यों की उपन्यास विषय के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा चिन्तन के एक नवीन मार्ग प्रशस्त करने के साथ ही साथ ऐसे सुअवसर उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया जाये जिससे दोनों साहित्य अधिक समीप आ सकें और दोनों वर्गों के साहित्यकार एक दूसरे की प्रतिभा से पर्याप्त लाभ उठा सकें । हिन्दी उपन्यास की विभिन्न पद्धतियाँ उभर कर सामने आयें साथ ही उर्दू उपन्यास परिधि में होने वाले कला और शिल्प के नये प्रयोगों से भी हिन्दी पाठक अनभिज्ञ रह सकें । साथ ही उन मूल्यों और कारणों के संकेत भी मिल सकें । जिनके फलस्वरूप समान परिवेश और सामाजिक संरचना के मध्य रहते हुए भी दोनों वर्गों के लेखक की मानसिकता में समानता के साथ ही पर्याप्त अन्तर भी परिलक्षित किया जा सके ।

हिन्दी उपन्यास के शोशाब काल में जहाँ एक ओर सुधारवादी और

आदर्शवादी उपन्यास लिखे गये वहीं दूसरी ओर शुद्ध मनोरंजन के साथ बुद्धि को लयकृत कर देने वाले स्ययारी तिलस्मी उपन्यास भी लिखे गये । उर्दू में भी उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ सुधार और आदर्श प्रतिपादन की दृष्टि से किया गया । इस युग में उर्दू में आदर्शवादी रोमानों और सुधारवादी कृतियों तो प्रकाश में अवश्य आयों पर तिलस्मी उपन्यासों का लगभग आभाव सा हो रहा । किशोरी लाल गोस्वामी और सज्जाद हुसैन ने सामाजिक समस्याओं में अपने को समय-समय पर उनको इस दृष्टि से पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी ।

हिन्दी और उर्दू उपन्यास -विषय के वस्तुतः पूर्ण उत्कर्ष प्रेमचंद युग में प्राप्त हुआ । प्रेमचंद ने उपन्यासों को न मात्र आधुनिक बनाया प्रत्युत वे नवीन सोपानों के मार्ग द्वारा के रूप में भी उभरे । प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य के धरातल पर जीवन भी विविधता और यथार्थ के अनेक रूप उभरे और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास के वैभव और प्रौढ़ता प्राप्त हुई । फ्रायड और लार्न्स के गम्भीर प्रभाव ने हिन्दी उपन्यास को नव आयाम दिये और जेनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय ने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, आत्मपीड़न और निराशावाद के मध्य से यात्रा करते हुए आत्मपीड़न की परिस्थितियों में भी संघर्ष की विद्रोही उदघोषक करके शिल्प के स्तर पर नवक्रान्ति की । यशपाल, वृन्दावन लाल शर्मा रांगेय राघव, हजारो प्रसाद द्विवेदी आदि ने भी हिन्दी उपन्यास विषय को सशक्त बनाने में पर्याप्त योगदान किया ।

उर्दू उपन्यास साहित्य में भी प्रेमचन्द के पश्चात अनेक मोड़ आये । प्रगतिशील आंदोलन से सम्बद्ध विचाराधाराओं और फ्रायड के चिंतन प्रभाव ने प्रेमचन्दोत्तर उर्दू उपन्यास को भी एक नवीन शिल्प प्रदान कर दिया था और वह सज्जाद जहीर, अजीज अहमद, कृष्णचंदर, इब्राहीम जलील, मन्टो, हैदर, और इस्मत चुगताई के रूप में नवीन आयाम प्राप्त कर रहा था परन्तु फिर भी उसमें हिन्दी उपन्यास की भाँति वैविध्य, विस्तृतता और नवीनता के दर्शन नहीं हो पाते । प्रगतिशीलता ने उर्दू उपन्यासों को सीमित कर एक विशेष परिधि में आबद्ध कर दिया और यही प्रतिबद्धता इस युग के उर्दू उपन्यास कार्यों की सीमा बन गयी ।

विभिन्न राजनीतिक परिस्थितियों ने देश के विभाजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। साम्प्रदायिक, विभीषिका, अपहरण, बलात्कार और विभिन्न अमानवीय घटनाचक्र में आबद्ध शरणार्थियों ने भारत में आश्रय लिया। अतः स्वतन्त्रता के तुरन्त पश्चात का समय कुण्ठा संक्रांत, अवसाद और निराशा का रहा। एक ओर जब राष्ट्र विकास पथ की ओर उन्मुख हुआ वही दूसरी ओर भ्रष्टाचार, अनीति दमन और अपहरण की नीति भी अपना आतंक जमाया और स्वार्थों के स्थानि अनेक राष्ट्रव्यापी समस्याओं को जन्म दिया। डा० योगेन्द्र बख्शी के अनुसार इस प्रकार 1960 तक के भारत का राजनीतिक परिवेश महान संग्राम के ज्वलते सफ़लता पाने तथा स्वातन्त्र्य को सहेजने के विराट प्रयास की कथा है। यथार्थ में दृष्टि से भी यह युग संघर्ष और संक्रमण का युग रहा है। एक प्रकार से इस युग को सामन्तपवाद से पूंजीवाद में परिवर्तित होने का युग कहा जा सकता है। इसीलिए इस युग के हिन्दी और उर्दू उपन्यास साहित्य में विद्रोह के स्तर के साथ ही साथ नवीन प्रतिमानों की स्थापना का प्रयास मिलता है। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का मानवीय स्वरूप उभर कर सामने आया।

विशेषतया तन् साथ के पश्चात उपन्यास एक जीवन्त और सशक्त विषय के रूप में मानव जीवन की आन्तरिक ऊर्जा के प्रमाणिक दस्तावेज के रूप में उभरा है। इसमें जीवन की विभिन्न समस्याएँ अपने आदेशों से मानव को आत्मीय और परिचित बनाती हुई अपनी समानता में अनेक प्रश्नों को उकेरते हुए संवेदना के सूक्ष्म तंतुओं को झिझोड़ कर मानव मात्र नए संघर्ष प्रदान करती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और समाज-सापेक्ष करमों के आकलन और मानवीय जिजीविषा संक्रांतियों और घुटन के रहस्य उससे संघर्ष एवं टूटने बिखरेने की पूर्ण कक्षा को उपन्यास साहित्य में एक भाषा मिली है। एक ऐसी भाषा जो नये तेवरों से मुक्त है। वह यथार्थ के व्यापक फलक पर मानव की अस्मिता पर लगे आधार भूत सवालों का सार्थक जवाब खोजते हुए बदलती युगीन मासिकता और उनके पतिपादन की ओर भी इंगित करने में समर्थ है। इस प्रकार मानव चिंतन और उसके विविध आयामों को उपन्यास में एक नया स्वर प्राप्त हुआ है और

उत्तम गतिशील मानव समाज का वैविध्य उभर कर सामने आया है ।

आधुनिक युग में उपन्यास "मोहभंग" के परिणामस्वरूप जन सामान्य के जीवन के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में महाकाव्यात्मक फलक पर प्रतिष्ठित होकर सामान्य जन का प्रतिधामो सिद्ध हुआ है । बृहत्तर मानव समाज की अन्तिम अविभाज्य इकाई व्यक्ति के व्यष्टि में समाहित जीवन मूल्य और बदलते प्रतिमान, बौद्धिक विचाराभिव्यक्ति और अस्मिता को शिनाख्त छपटाहट की मानसिकता ने संक्रांति और यथार्थ की भित्ति पर आधुनिक उपन्यास का निर्धारण किया है ।

सन साठ के पश्चात् नई परिस्थितियों और घटनाओं के फलस्वरूप उपन्यास में गुणात्मक परिवर्तन आया । स्वतन्त्रता के बाद से ही व्यक्ति और समाज के सामंजस्य के लिये एक ओर पुराने मूल्यों से संघर्ष प्रारम्भ हुआ तो दूसरी ओर मानवतावादी दृष्टिकोण भी उभर कर सामने आया ताकि व्यक्ति और समाज को नूतन आयाम दे सकें ।

'अधरे बंद कमरे', 'वे दिन', 'यह पथ व्युत्था' आदि मध्यवर्गीय जीवन के मानसिक संक्रास और व्यथा के मध्य बिखरते मानव की व्यथा कथा है ।

साम्प्रदायिक विभोषिका और विभाजन की त्रासदी और मानवीय कष्टों को मूर्तिमान करता "तमस" और "लौटे हुए मुसाफिर" मानवीय कष्टों की गाथा कहते हैं ।

इस युग में महिला लेखिकाओं का विशिष्ट महत्व रहा है । अपनी सम्पूर्ण परिधि में आज की शिक्षित नारी की जीवन्त छवि को उकेरने में इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । "रुकी नहीं राफिका और पचपन खेमे लाल दीवारें" जैसे उपन्यासों में स्वतन्त्रता के पश्चात् की नारी अपने को सामाजिक दायरों में घिरा महसूस करती है ।

- - - - -

बुझा सोबती ने नारी की आन्तरिक ऊर्जा को उसकी यौन साहसिकता और विवशता के मध्य से उभारा है ।

ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को स्पर्श करने वाले उपन्यासों में आधा गाँव, राग दरबारी, अलग-अलग वैतरणी, जल टूटता हुआ, बबूल, धरती धन न अपना, अंधेरे के विरुद्ध आदि दृष्टिगत होते हैं । इसी युग में आंचलिकता भी नई दृष्टि और नूतन आदृष्टों की शिनाख्त भी होती है । "अंधेरे कमरे" और "वे दिन" जैसे उपन्यासों में आधुनिकता की चुनौती को भी स्वीकारा गया है ।

उर्दू उपन्यास के क्षेत्र में राजेन्द्र सिंह बेदी ने "एक चादर मैली सी" के द्वारा भारत के एक विशिष्ट वर्ग के चेहरे को बेनकाब करने का प्रयत्न किया है ।

"शब गजोदाह" में काज़ी अब्दुल सत्तार ने पहली बार जमींदार और किसान की प्रगतिशील आंदोलन की परिधि से बाहर निकाल चिंतन की एक नयी दृष्टि प्रदान की है ।

"खुदा की बातों में जीवन का अंकन का यथार्थवादी दृष्टिकोण दृष्टिगत होता है ।

अब्दुल्ला हुसैन ने "उदास नस्लों" में यह बताने का प्रयास किया है कि मानव का परिवेश ही उसकी उदासी का कारण बनता है । परिवेश की बेचैनी इन्तेशार और बेचैनी एक ऐसी मानसिकता का निर्माण करती है जिसके फलस्वरूप सही और गलत को समझने की शक्ति समाप्त हो जाती है । मानसिक शक्ति का अभाव एक पूरी पीढ़ी की उदासी का कारण बन जाता है ।

"आँगन" में साम्प्रदायिक विभीषिका में एक परिवार के बिखरने की कथा को भाषा मिली है ।

"आबला पा" प्राचीन और नये मूल्यों के संघर्ष की गाथा है ।

स्पष्ट है कि सन् साठ के पश्चात् नई परिस्थितियों और घटनाओं के फलस्वरूप हिन्दी-उर्दू उपन्यास साहित्य में गुणात्मक परिवर्तन आये । प्रस्तुत

शोध कार्य में साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में यह प्रवृत्ति अधिक मुखर होकर उभरी है । आंचलिकता के मध्य से उभरती लोक चेतना, जनवादी स्वर और संघर्षरत अस्तित्व के परिपार्श्व में ठूँहो-जुड़ते आदमी की नियति के पाश आबद्ध व्यक्ति, मूल्यगत संक्रमण, युगबोध, कला एवं शिल्प के नये प्रयोग, उपन्यासों में उभरता महाकाव्यीय आलोक, आधुनिकता इत्यादि प्रवृत्तियों की छबियों और मूल्यों की तलाश का कार्य करने का प्रयास किया जा रहा है । साठोत्तर हिन्दी और उर्दू उपन्यासों की उपलब्धियाँ, सीमा और वैषम्य को परखने की प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा समीक्षा के एक नये आयाम के सर्जना के साथ ही चिंतन के नये पथ भी प्रशस्त होंगे । यही इस कार्य का महत्व और उपयोगिता है ।

द्वितीय - अध्याय

पूर्व विवेच्य युगीन हिन्दी-उर्दू उपन्यासों की परम्परा और विरासत

आधुनिक युग में उपन्यास जन-जीवन की आन्तरिक ऊर्जा और चेतना के परिमार्जित रूप में, साहित्यिक क्षितिज पर नवीन आयामों की सर्जना करता हुआ नये परिवेश के साथ नयी गति नयी दिशा और नयी उपलब्धियों का साक्षी बन गया है। जीवन में विद्यमान यथार्थ की उसकी समग्र संभावनाओं सहित शिनाख्त करके आधुनिक उपन्यास ने स्वेदनशील मानव के अस्तित्व के सम्मुख अनेक प्रश्न बिन्दु उठाए हैं और एक नये संघर्ष-बोध को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस अभिव्यक्ति के अनेक स्तर रहे हैं। "सर्जनशील साहित्य की यह विशिष्ट पहचान है कि वह अर्थ के अनेक स्तर प्रस्तुत करता है।" इन उपन्यासों में अभावों और संघर्षों के मध्य से गुज़रती हुई जिंदगी की अभा को पकड़ने और महसूसने का स्पष्ट प्रयास दृष्टिगत होता है।

चिन्तन फलक में परिवर्तन होने के साथ ही साथ उपन्यास के स्वरूप में भी परिवर्तन आते रहे हैं और उपन्यास साहित्य युगानुरूप बदलाव के साथ विभिन्न मोड़ों से गुज़रा और विभिन्न दिशाओं का साक्षी बना है। वस्तुतः मानवीय सभ्यता और संस्कृति के प्रारम्भिक विकास-शृंखला की एक कड़ी का नाम ही उपन्यास है परन्तु "किसी न किसी बिन्दु पर आकर उसमें एक अन्तरंग और गुणात्मक परिवर्तन आया और यह परिवर्तन इत्ना

मौलिक था कि आज इस साहित्य-विधा का अध्ययन करने के लिए उसके पूर्व रूप का अध्ययन कोई अर्थ नहीं रखता ।¹

प्रारम्भिक हिन्दी-उर्दू उपन्यासकारों ने पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली विकृतियों के विग्रह प्रस्तुत करने के साथ ही साथ उपन्यास को सुधार और आदर्श प्रतिष्ठापन का माध्यम भी बनाया है । वस्तुतः प्रारम्भिक उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य जीवन में आदर्शों की ऊन्नारपना और सुधारवादी उपदेशों के साथ भरपूर स्फोरजन उपलब्ध कराना ही रहा है । मौलवी नज़ीर अहमद ने उर्दू में सर्व प्रथम 'भिरातुल उस' 'ब्यातुन्नाश', 'लोबतनुसुह', 'फसाना मुव्तेला', 'इब्नुल वकत' 'अयामी' और हिन्दी में 'शेडाराम फिल्लोरी' ने 'भाय्यवनी' श्रीनिवास पास ने 'परीक्षासूत्र', 'रत्नजंघ फ्लीडर' ने 'नूतन वरित्र', 'बालकृष्ण भट्ट' ने 'सो अजान एक सुजान' आदि उपन्यास लिख कर उपन्यास परम्परा का श्रीगणेश किया परन्तु उपन्यास को प्रेमवन्द युग में ही जीवन के विभिन्न छाया चित्रों को चित्रित करने में पूर्ण सफलता मिल सकी । इस युग के उपन्यासों में जीवन की नम्र वास्तविकताओं से साक्षात्कार करने का प्रयत्न भी दृष्टिगत होता है ।

प्रेमवन्दोत्तर युग मुख्य रूप से विद्रोह और अस्वीकृति का युग रहा है । नवीन मूल्यों और गन्तिमानों की स्थापना के प्रयास भी स्पष्ट द्रष्टव्य हैं । स्वतन्त्रता के पश्चात् नये सामाजार्थिक परिवेश और नूतन राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सोपानों ने भी उपन्यास को पूर्ण रूप से प्रभावित किया और आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों ने उपन्यास को भी यथासंभव नई दिशाओं का अनुगामी बना दिया । फलतः उपन्यास के फलक पर नई संभावनाओं

1. मानविकी परिभाषिकोश : साहित्य खण्ड, पृ० 130, डा० नगेन्द्र

का जन्म और मृत्यु दिशाओं का विकास संभव हुआ। आज "उपन्यास मनुष्य के अन्तर्निहित सामर्थ्य की पहचान है। वह आत्मान्वेषण की प्रक्रिया है जो जटिल एवं परिवर्तनशील सन्दर्भों में मनुष्य की आन्तरिकता की खोज है। वह मानवीय आस्था का दस्तावेज है जो सैद्धान्तिक धरातल पर स्वीकृत होकर यथार्थ संश्लेषों - विवेकान्तियों ने साक्षात्कार करने की दिशा देना है।"¹

स्पष्ट है कि महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों ने उपन्यास को जन्म दिया और उसने लोक कथाओं के प्रारम्भिक युग से गुज़र कर वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया है। इसीलिए "उपन्यास मानवीय विचार और भावनाओं को प्रस्तुत करनेवाली महान्तर साहित्यिक विधा है।"² वस्तुतः "उपन्यास विस्तृत मानवीय जीवन की बिखरी हुई तस्वीर है।"³ और "उपन्यासों की उत्पत्ति का एक बहुत बड़ा कारण यही है कि साधारण मनुष्यों के मोनो क भाव को उनके द्वारा वाणी मिली है उन्हें अपने मन के रूप का प्रत्यक्ष परित्यक्त और आत्म-प्रकाश का सुयोग मिला है।"⁴ उपन्यास को हम मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कह सकते हैं। "उपन्यास मानव जीवन के ऐसे छोटे-बड़े किन्तु हैं जिनमें जीवन की व्याख्या की जाती है।"⁵ वस्तुतः जीवन को अपनी समग्रता में व्याख्यायित करने एवं परिस्थितियों और परिवेश की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ही उपन्यास का प्रादुर्भाव हुआ। फल-स्वरूप वह व्यक्ति के समष्टि और प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष के महागीत के रूप

1. डा० सुरेश चिन्हा : हिन्दी उपन्यास , लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद स० 1972 , पृ०

2. डी०एच० लाटेन्स का कथन- नावेल एण्ड दि मार्न वर्ल्ड डेविड अपसी ,पृ० 140

3. स्माजेट दि शोरी आण्ड इग्लिश नावेल स० जार्ज ह्यूडन फिलिप , पृ० 11

4. बिहार राष्ट्रभाषा कीषद के अंश 1972 में स० उपन्यास साहित्य ले० प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र , पृ० 72

5. हिन्दी युगीन हिन्दी उपन्यास , पृ० 2 , डा० शारदा आनन्द , वि० वि० वि० प्रकाशन लखनऊ 1967

में रेखांकित हुआ और व्यक्ति और समाज के नये संश्लिष्ट रिश्तों को परस्पर पर पर उभेरना और जीवन के सुर लाल की लय पर नृत्य करना उसके आरोह-अवरोह के मध्य से सर्जात्मक मार्ग खाना विकास के नए सोपानों की ओर अग्रसर होना रहा है।

भारत की विशिष्ट परिस्थितियों और युगानुरूप आवश्यकता और मांग ने हिन्दी और उर्दू दोनों के साहित्यकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। प्रेमचन्द-पूर्व के हिन्दी उर्दू उपन्यास साहित्य का लक्ष्य अधिकांशतया विशुद्ध मनोरंजन एवं विभिन्न घटनाओं के माध्यम से समाज को उपदेश देना रहा है। इस युग के उपन्यासकारों पर प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य का गहरा प्रभाव दृष्टिगत होता है। स्तार के उपन्यासों और शेक्सपियर के नाटकीय पात्रों का प्रभाव भी स्पष्ट ही दृष्टव्य है। फारसी कथा-साहित्य की 'निस्तर्मे होश रुबा' 'दास्ताने अमीर हाजा, और बोस्ताने ख्याल' जैसी रचनाओं ने भी प्रारम्भिक उपन्यासों पर गहन और विशेष प्रभाव डाला। पाश्चात्य उपन्यास के स्वरूप को कला के माध्यम से ग्रहण करते हुए भी प्रारम्भिक उपन्यास आफिस के रूप में परम्परावादी रहे, परन्तु कुछ उपन्यासों में कल्पित विशिष्ट आधुनिक प्रवृत्तियों के दर्शन भी हुए। इस युग के उपन्यासकार वमत्कारिक घटनाओं का सर्जन करके समाज का भरपूर मनोरंजन तो अवश्य कर रहे थे और समाज सुधार एवं उपदेश का स्वर भी उनमें प्रतिभाषित हो रहा था पर जीवन की कटु और नम्र वास्तविकताओं और यथार्थ की जटिल और सीढ़ी भूमि की ओर उनकी दृष्टि नहीं जा पायी थी। फलस्वरूप उनके उपन्यासों में कौतूहल, वमत्कार और जिज्ञासा तो अवश्य प्राप्त होता है परन्तु जीवन की यथार्थ समस्याओं के समाधान की ओर इतिवृत्त करने में वह असमर्थ रहते हैं और कल्पना के अमृदूर्ण पलों पर वमत्कारिक घटनाओं की दृष्टि ही उनका एक मात्र लक्ष्य रह जाता है।

अजीज अहमद' के 'ऐसी बूंदी ऐसी पस्ती' डा० अहसन फाउमी के - 'शामे अजब' 'कर्सतुलएन हेदर' के मेरे भी सनम छाने' सफीन ए गमेयिल' जैसे उपन्यासों को छोड़कर जो भी उपन्यास साहित्यिक क्षितिज पर उभरे वह मात्र सामयिक परिस्थितियों एवं विभाजन की त्रासदी को ही आधार बनाकर लिखे गये और संभवतः इसका बड़ा कारण विभाजन की त्रासदी के फलस्वरूप उत्पन्न सांस्कृतिक शून्य ही रहा है।

पूर्व द्विवेद्य युगीन हिन्दी उपन्यासों की परम्परा और विरासत

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में 'श्रद्धाराम फिहलोरी' द्वारा रचित 'भाय्यवली' [1977] को प्रथम उपन्यास माना जा सकता है क्योंकि विषय वस्तु और शैली दोनों ही दृष्टियों से इसमें आधुनिक उपन्यासों की झलक दृष्टिगत होती है। "विषय वस्तु की मवीनता की दृष्टि से 'फिहलोरी' रचित 'भाय्यवली' सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास कहा जा सकता है, जिसमें विषय वस्तु और कलात्मकता दोनों ही दृष्टियों से नए युग की झलक मिलती है रीतिकाल तक लिखे गये शृंगार और वैराग्य प्रधान उपन्यासों को देखते हुए 'फिहलोरी जी की यह रचना महत्वपूर्ण है। 'भाय्यवली' का प्रारम्भ नाटकीय ढंग से किया गया है जो प्राचीन कथा-प्रणाली से सर्वथा भिन्न है।" इसके पश्चात् 'श्रीनिवास दास' के 'परीक्षा गुरू' [1982] का नाम जाना है जिसमें कला युग की आकांक्षाओं के अनुरूप बहने का प्रयत्न करते हुए दृष्टिगत होती है। 'परीक्षागुरू' के बाद 'र. लंद प्लीडर' द्वारा रचित 'नूतन वरित्र' [1983] बाल कृष्ण भट्ट' द्वारा रचित 'नूतन ब्रह्मवारी' [1986], 'सो अज्ञान एक सुजान' [1992], 'राधाकृष्ण दास' रचित 'नित्सबाय हिन्दू' [1990], राधा कृष्ण गोस्वामी' के 'विधवा विपत्ति' [1988], कार्तिक प्रसाद खत्री रचित 'ज्या' [1996] आदि प्रमुख उपन्यासों के नाम लिये जा सकते हैं। "हिन्दी में इस

युग में लिखे जानेवाले उपन्यासों की एक प्रवृत्ति थी समाज की बुराइयों को ध्यान में रखते हुए नीति एवं उपदेश परक रचनाओं का सर्जन करना। पात्रों के चरित्र के सखलना के अभाव में ही उपन्यासकार पात्रों के चरित्रात्मिक गुण-दोष विवेक में असमर्थ रह जाया करते थे। अतः उपन्यास का प्रारम्भिक कालेख चरित्रों से भरा होने के कारण ही पूर्ण रूपेण शुद्ध और सुन्दर नहीं हो सका।¹ परन्तु नवी साहित्यिक क्षितिज पर तीन ऐसे आग्रहों का अवतरण हुआ जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को मौलिकता प्रदान कर एक नए अध्याय का सुत्रपात किया। 'देवकी नन्दन छत्री' के रचित त्रिसुखी उपन्यासों की सजीवता ने उपन्यास को महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित कर दिया और उपन्यास के पाठकों में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई। रेनार्ड्स, ठेके और शरलाक होम्स से प्रभाव ग्रहण कर गोपाल राय महमरी ने तार्किक और बुद्धि को चमत्कृत करने वाली शैली में जासूसी उपन्यासों का श्रीगणेश किया जो किशोरी लाल गोस्वामी ने अपने जो सामाजिक समस्याओं की ओर केन्द्रित करके सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास का सुत्रपात किया और इस दृष्टि से उन्हें प्रेमचन्द की पूर्व पीठिका भी कहा जा सकता है। सास-बहू, दहेज, विधवा और केश्या समस्या की ओर सर्व प्रथम इन्होंने ही संकेत किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में कुछ उपन्यासकारों ने आदर्श और धार्मिक उपदेशों में अपने जो समाज को दूसरी ओर छत्री जी ने चमत्कारपूर्ण उपन्यास लिखकर एक नई धारा को जन्म दिया जिसने हमरी जी ने जासूसी उपन्यासों की ओर मोड़ दिया और गोस्वामी जी सामाजिक समस्याओं की ओर अपने जो केन्द्रित करके बाद के सामाजिक उपन्यासकारों की

~~कोश-काले-कोश-केन्द्रित-करके~~

1. डा० शारदा आग्रवाल : द्विवेदी युगीन हिन्दी उपन्यास, पृ० 2-3,

वि०वि० हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ 1967

पूर्ण पीठिका में। इस पर बीजा, मराठी, गुजराती और हीब्राई उपन्यासों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा।¹ उनके लगे लगी मछमरी एवं गोस्वामी के उपन्यास पर्याप्त जगह प्राप्त कर रहे थे किन्तु उनमें कमजोर बीजा, कुरुक्षेत्र और निरन्ध्र कल्पना के अतिरिक्त विशेष कुछ न था। इस साहित्यकारों ने अधिष्ठ नैतिक मानकों के अतिरिक्त समसामयिक जीवन की वास्तविक समस्याओं की ओर अब ही ध्यान दिया था।²

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि इस युग में घटना प्रधान, मनोरंजन प्रधान, ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों का सर्वम हुआ जो जीवन को इसी समग्रता में समेट पाने में असमर्थ रह गये थे। परन्तु अभी द्रैम-कन्द जीवन और भविष्य को संतुलन करनेवाली श्रृंखला के रूप में भविष्य की संभावनाओं की पहचान का उद्दिष्टा बन कर उभरे।

द्रैमकन्द ने महँ संभावनाओं के आदुन के रूप में हिन्दी उपन्यास-साहित्य को नया भित्ति और नया धरातल प्रदान करते एक नए युग का सुषट्ण किया। द्रैमकन्द ने प्रादुर्भाव से उपन्यास साहित्य के अतिरिक्त पर एक महँ ऊर्जा का प्रत्युत्पन्न हुआ और जीवन के यथार्थ से संबंध उपन्यासों ने कमजारी बुद्धियों के उपन्यासों का लोप करते उनका स्थान ग्रहण कर लिया। प्रारम्भ में द्रैमकन्द क्रांतिवादी आंदोलनों से भी प्रभावित हुए पर यथार्थ की पीठिका से वह लम्बी डिग्रे नहीं।

द्रैमकन्द ने युगीन मानव के अस्तित्व की खोजों और युगीन जीवन की समस्याओं से गहरे रूप में सम्पर्क होकर अपने उपन्यासों में यथार्थ -

1. डा० मकुन्द दिवेदी : युग मेधा और पाठ्यीय सौख्य, पृ० 17

सोड भारती प्रकाशन प्रकाश 1970 ई०

फलक पर यिककाल के अनेक जीवनत छाय-चित्रों का निर्माण करते हुए साहित्य और जीवन दोनों को नई ऊर्जा और अर्थका प्रदान की ।

जनसाधारण के जीवन की उपन्यासों का केन्द्र-बिन्दु बनाकर प्रेमचन्द ने अनुभव और यथार्थ की भिवित पर नए सोपानों का सर्जन किया । "सामाजिक सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण प्रेमचन्द अपने उपन्यासों के अन्तर्गत राजनैतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में समसामयिक यथार्थ के पीछे-पीछे चलनेवाले कलाकार नहीं है बल्कि उससे आगे-आगे चलनेवाले प्रकाश केन्द्र है । वे अपने समय के समस्त यथार्थ को आत्मसात् करते हुए भविष्य की ओर इंगित करनेवाले , समाधान प्रस्तुत करनेवाले न्या राह दिखानेवाले साहित्यकार हैं ।"¹

प्रेमचन्द के उपन्यास युग-बोध और युग-वेत्ता के प्रतिबिम्ब और प्रतिमान के रूप में विकसित हुए हैं । "प्रेमचन्द ने समसामयिक जीवन में गहरे पैठ कर उसकी एक-एक प्रवृत्ति को समझा और अपने पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर उसे अपनी परिस्थितियों के प्रति प्रबुद्ध किया ।"² वस्तुतः प्रेमचन्द किसी वाद विशेष के पोषक न बनकर जीवन के विभिन्न पक्षों को अपनी समग्रता में उकेरना चाह रहे थे । सामाजिक और मनः सत्य इन दोनों त्तराशर प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों को निखारा और जीवन के आधारभूत सत्य को पकड़ सकने की शक्ति ने ही उन्हें समर्थ और सज्जन उपन्यासकार के रूप में विकसित किया । जीवन मूल्यों का परिवर्तन संक्रमण और संक्रान्ति के बिन्दु पर उड़ा मानव और भोक्तृतावादी सभ्यता का यथार्थ उनके उपन्यासों को पैनापन प्रदान कर सजीव बनाता है । इस प्रकार प्रेमचन्द के रूप में हिन्दी उपन्यास - साहित्य को एक सज्जन आधार प्राप्त हुआ ।

1. डा० राममूर्ति त्रिपाठी: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 193

2. महेन्द्र चतुर्वेदी - हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण

प्रेमचन्द ने अपने लेख का प्रारम्भ उर्दू उपन्यासों के द्वारा किया था क्योंकि उनके प्रारम्भ के उपन्यास विशेष महत्त्व के अङ्गकारी न बन सके। आधुनिकता और आधुनिक उपन्यास की कसौटी पर तबरा उभरनेवाला उनका सर्व प्रथम उपन्यास 'सेवा-सदन' [1912] है। जीवन को अपने समग्र रूप में पढ़ सने की कृष्ण और यथार्थ कन्वेंशिट ने 'सेवासदन' को सामंत वर्ग की अदृष्टालिकाओं पर व्यापक अदृष्टवास करने वाले एक समग्र उपन्यास के रूप में विकसित किया जिसने "दूरी हुई नारी के छुड़-छुड़ कियों की जीवंत छवि थी।"¹ निजी अनुभवों और विचार गाम्भीर्य ने 'सेवासदन' को आधुनिक बना दिया। "आधुनिक इसलिए कि वह अपने युग के व्यथितता और सामुहिक सत्य का यथार्थ, व्यापक और क्लिष्ट निरूपण करता है। आधुनिक इसलिए भी है कि उसमें मानव समाज की परिस्थितियाँ और मानसिक उथल-पुथल की एक ऐसी कथा है जिसे हम अपनी नाड़ी पर महसूस करते हैं।"²

'सामाजिक क्रिया के अहरीले हस्ताक्षरों' के जीवन-रूप में 'प्रेमाश्रम' [1922] में शोषक इमीदारों के शोष्य और ग्राम्य-जीवन को आधार बनाकर समस्याओं का गाँधीवादी समाधान प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में सामाजिक सत्य 'माध्यम से व्यापक धार पर समग्र मानव-जीवन को अपनी परिधि में समेटने का प्रयास दृष्टिगत होता है।

'घर के अडाने में यथार्थ की कल्पना' करानेवाले उपन्यास 'निर्मला' प्रकाश; और गहन प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा के महत्वपूर्ण पड़ाव को बता सकते हैं। 'निर्मला' [1923] का वैशिष्ट्य इसकी लघुता और यथार्थावित

1. प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा: नव मूल्यांकन, पृ. 132, ग्रेस जेदी, 90सं०

1973, पृ. 90 हाउस अनीगढ़

2. वही, पृ. 135

अन्त में है। 'प्रतिज्ञा' प्रेमवन्द के उपन्यासों में निर्दल कृति नज़र आती है फिर भी शोषवादी नीतियों का गहरा विरोध और उनके प्रति तीव्र आक्रोश उपन्यास को कुछ महत्ता प्रदान कर देती है।

'गवन' [1930] के सजीव पात्रों ने इस उपन्यास जीवन्त रूप प्रदान कर इसे महत्वपूर्ण कृति बना दिया है। "यह उस दिशाविहीन पीढ़ी की कहानी है जिसके भटकाव का दायित्व केवल उस पीढ़ी पर नहीं है अपितु उसे जन्म देनेवाली परिस्थितियों पर भी है। यह उन घरों की कथा है जो पारस्परिक प्रेम और सहार्द के अभाव में भीतर ही भीतर टूट कर बिखर जाते हैं।"¹

'सत्य न्याय और धर्म के शावत दस्तावेज़' के रूप में 'रंग भूमि' का भी अपना विशिष्ट महत्व है। गांधीवादी मान्यताओं और आस्थाओं का स्फुरण स्पष्ट ही दृष्टव्य है। यह औद्योगीकरण के भीषण सत्तावाद में एक बस्ती-बसायी बस्ती के उजड़ जाने की कहानी है। सर्जनात्मक आशावाद ने 'रंगभूमि' को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। 'रंगभूमि' में आशावादिता की रक्तात्मक गूँज है सौन्दर्यपरक यथार्थ के कोमल मोड़ हैं और जीवन के क्रमादर्शों की गहरी पकड़ है।²

'सांप्रदायिकता, आतंक और पौराणिक जिलासिता के नम्र छाया-चित्र' के रूप में 'कायाकल्प' [1926] एक श्रेष्ठ उपन्यास के रूप में उभरता है। विभिन्न तत्त्वों और उनकी सांप्रदायिक विभीषिका का स्पष्ट लेखा-जोखा इसमें प्राप्त होता है। सम्पूर्ण हिन्दुस्तान अपनी अन्धाधियों और बुराईयों के साथ साकार हो उठा है।

1. प्रेमवन्द की उपन्यास यात्रा: नव मुल्यांकन, पृ. 295, रेलेश जेदी, 1978

2. वही, पृ. 234

‘आन्दोलन और दमन के तैलाब में स्वराज्य की परिकल्पना’ करना ‘कर्म भूमि’ [1932] भारत के समसामयिक राजनैतिक परिवेश का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करना है। ‘कर्मभूमि’ की कथा में प्रेमचन्द ने अपने युग के राजनैतिक इतिहास को गुफित सा कर दिया है।¹

‘सापेक्षिक जीवन-मूल्यों की भरपूर वासदी’ के रूप में उभरा ‘गोदान’ [1936] हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा का प्रमुख महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी पड़ाव है। ‘यह उपन्यास केवल होरी का गोदान नहीं है। प्रेमचन्द की आस्था का भी गोदान है, सदनो, निक्खनो आश्रमों में लेखक की आस्था का गोदान है।’²

‘गोदान’ में यथार्थ चित्रण की दृष्टि निर्णायक रही है और उपन्यास के धरातल पर आधुनिक वेन्ना सर्व प्रथम ‘गोदाब’ में ही प्राप्त होती है। ‘गोदान’ आदि से अन्त तक एक वासदी है और यह वासदी उस बेज़बान पीढ़ी की है जो अपनी मर्गादा को सलीब की तरह अपने बड़े कंधों पर उठाये हुए मोट की ओर आगे बढ़ रही है।³ आर्थिक संस्कृति और नए मूल्यों पर आधारित महाजनी सभ्यता उपन्यास में उभरकर सामने आती है। अपने समग्र रूप में ‘गोदान’ की कथा शहर और देहान्त की कथा न होकर इतिहास जन्य परिस्थितियों से जन्मी युगीन यथार्थ की कथा है। यह युग की सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक और बौद्धिक विसंगतियों को चित्रित करनेवाली एक सफलतम कृति है।⁴ जीवन का वैविध्य, शोष के बदलते माध्यम, विसंगति और वैषम्य ‘गोदान’ में साकार और सजीव रूप लेकर उभर हैं। निष्कर्ष के रूप में

1. प्रेमचन्द का उपन्यास यात्रा: नव मूल्यांकन, पृ० 315, शैलेजा जेदी 1978

2. आज का हिन्दी उपन्यास, पृ० 9, डा० इन्द्रनाथ मदान, 1966 राजकमल प्रका०

3. वही, प्रथम - पृ० 387

4. वही, पृ० 396

कहा जा सकता है कि 'गोदान' की एक सफल कृति है। ——— इसमें क्रांति का सम्मोह भी है और बन्धुत्व की भावुकता भी समाजवादी गन्ध भी है और वैदानी संगीत भी। 'गोदान' नाम है जीवन की असंगतियों को पहचानने का, सामाजिक यथार्थ को निकट से देखने का, अस्तित्व को जीवित रखने की बेसहाय छद्मटाहट का इन्द्र की बोहद्विद्यों से ऊपर उठकर प्रगति का समस्त मार्ग खोज निकालने का। गोदान का जीवन-दर्शन भारतीय होकर भी सार्वभौमिक है और सार्वभौमिक होकर भी भारतीय है।¹

प्रेमचन्द युग में प्रेमचन्द के समानान्तर ही एक और उपन्यास धारा भी बह रही थी और इस धारा के लेखकों ने 'प्रायड' और मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव ग्रहण कर नई प्रवृत्ति का सूत्रपात किया जिसने प्रेमचन्द्रोत्तर उपन्यास साहित्य पर गम्भीर प्रभाव डाला। 'प्रेमचन्द' के युग में ही उनके समकालीन 'जेन्द्र' ने 'प्रायड' के दिग्गम को गहरे रूप में स्वीकारा। मानव-मन के मानसिक ऊर्ध्वान्द और ऊनः जगत का चित्रण इनके उपन्यासों की विशिष्टता बन गयी। 'जेन्द्र' ने विवाह, यौन कण्ठाओं और उम्पत्य जीवन की समस्याओं को मानव-मन की शाश्वत समस्या बना कर प्रस्तुत किया परन्तु हृदियों और परम्पराओं की श्रृंखलाओं में जकड़े उनके पात्र स्वयं की शिनाउत कराने की छद्मटाहट के साथ ही साथ समाज की नैतिकता को भी बनाए रखने के प्रयास में कण-कण होकर बिखर जाते हैं पर यह कण किसी नए सोपान के सर्जन करने में समर्थ नहीं हो पाते और यही इनके उपन्यासों की सीमा है।

'जेन्द्र' के उपन्यासों का प्रारम्भ 'परछ' [1930] के साथ होता है किन्तु उनकी सर्जनात्मक ऊर्जा का प्रसूजन 'सूनीया' [1935] से ही होता है। "यहाँ एक काम कृण्ठित क्रांतिकारी को उसके चित्र की पत्नी

1. डा० जेलेश जेदी: प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा: नव मुल्यांकन, पृ० 461, 1978

सुनीला नैतिक-मैतिक कार्यों की परवाह किए बिना कृष्ण मुक्त करने का प्रयास करती है। यहाँ सामाजिक बंधन प्रधान नहीं है, प्रधान है कुछ विशिष्ट पात्रों की मानसिक स्थितियों का अन्त। इसीलिए इसका अभिव्यक्ति पक्ष भी नवीन है। यथार्थवादी शिल्प की नई संभावनाएँ यहाँ प्रथमः प्रकट होती हैं।¹

लेखक की दृष्टि कृष्ण हरेप्रसन्न और उसकी कृष्ण - ग्रथि यों की ओर ही रही है और आत्मजीवन से गुजरते पात्रों की मानस कथा ही मुख्य कथ्य है। "संभवतः यह हिन्दी का पहला उपन्यास था, जिसमें आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं और नागरिक सभ्यता में पले हुए नर-नारियों के अन्तर्मन की उलझनों पर सुवीक्षा रूप में प्रकाश डाला गया था।"²

जेनेन्द्र का 'त्याग पत्र' [1937] उपन्यास सामाजिक अन्याय के पाश में जाबड़ नायिका के आत्म जीवन की कथा है। सीदना के तन्तुओं को स्पष्ट करना यह उपन्यास नीव तैयार रखने के बादभीर्जन की ओर इंगित नहीं करता फिर भी पीड़ा के जीवन हो उठने के कारण उपन्यास महत्वपूर्ण बन जाता है। उनका एक अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास 'कल्याणी' [1940] है। इसमें भी प्रमुख त्वर आत्मजीवन का ही है। वस्तुतः "जेनेन्द्र काम-जगत् में आत्म-पीड़न को सर्वोपरि मानते हुए इन उपन्यासों में मानव-मन के शाश्वत संस्कारों को द्रामा-टिक रूप में चित्रित करने का प्रयास करते हैं। मानसिक ग्रन्थियों के उद्घाटन एवं विश्लेषण के लिए जिस विशेष लेखक की आवश्यकता थी, वह जेनेन्द्र में वर्तमान था।"³

1. डा० योगेन्द्र बख्शी: हिन्दी और पंजाबी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 81, प्र०सं० 1967 शोफ प्रबल प्रकाशन दिल्ली-6
2. परिवर्तन पत्रिका: बिहार राष्ट्र भाषा परिवर्तन पत्रिका- उपन्यास साहित्य लेख जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, पृ० 75, सं० 1972 ई०
3. डा० योगेन्द्र बख्शी: हिन्दी और पंजाबी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 81, प्र०सं० 1976

प्रेमचन्द की परम्परा में विशम्भर नाथ शर्मा, पंडित बैकुण्ठ शर्मा उग्र और स्थिराराम शरण ने भी उपन्यास लिखे। भारतीय संस्कृति एवं जीवन की श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन करानेवाले प्रसाद के कंकाल, निन्सी, और हरावली अपूर्ण उपन्यास भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनके उपन्यासों में यथार्थवादी चित्र उभरते हैं। चन्द्रसेन शास्त्री ने वैशाली की अमराजित मंदिर की नर्तकी, देवागता और रक्त की प्यास आदि उपन्यास लिखे परन्तु 'जेन्द्र' के पश्चात् उपन्यास क्रम में आगे बढ़ानेवाले उपन्यासकार के रूप में 'हलाचन्द्र जोशी' का स्थान ही महत्त्वपूर्ण है। 'प्रायड', 'एडलर' और 'युग' तीनों का ही उन पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है। 'वे मनुष्य के मन के अन्तर्मन के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा ही व्यक्ति के मनः सत्य तक पहुँच कर समाजवादी अस्तु भाव को बोट पहुँचाना चाहते हैं।'¹

'कृष्णमयी', 'सन्ध्यासी' [1941], 'पद की रानी' [1941], 'प्रेम और छाया', [1944], 'निर्वासित' [1946] आदि इन समस्त उपन्यासों में कृष्णलाल नामक के अन्तर्मन को उभारा गया है। इन उपन्यासों के पात्रों के असामान्य व्यवहार का कारण उनकी ग्रन्थियाँ हैं जो अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं। 'इच्छित' ग्रन्थि और मानसिक कृष्णों से ग्रस्त पात्र, 'काम' विन्दु पर आकृष्ट दिखायी देते हैं।

इसी शृंखला में 'अज्ञेय' की 'शेखर: एक जीवनी' [दो भाग 1941, 1944] उपन्यास साहित्य में नयी दिशा का उद्घोषक है। इसमें आधुनिकता के नए स्वर और शिल्प का नया प्रयोग दृष्टिगत होता है। इस उपन्यास का "मूल मन्तव्य है स्वतन्त्रता की खोज। इसकी खोज अपने को सबसे काँटकर नहीं की गयी है बल्कि अन्य के सन्दर्भों में की गयी है, मामूलीय

परिस्थिति में के बीच की गयी है। इसमें माध्यम ब विन होना है, यों
कहे कि उसकी व्यक्तिकता होनी है।¹

संघर्षरत व्यष्टि की व्यथा, दुःख और संक्रास के मध्य
उभरना शेर विद्रोही के रूप में उपन्यास को एक आधुनिक पीठिका प्रस्तुत
करता है। उसके रूप में युगीन मानव का विद्रोही स्वर मुखर हो उठा है
ज्यों कि "वह राज्य नहीं बना वाहना बल्कि अपनी निजी संभावनाओं
को अन्वेषित करना वाहना है।"² संभवतः इसीलिए वह सामाजिक प्रतियन्धों
और मान्यताओं की मोड़ डालना वाहना है और ऐसे सम्बन्धों और धारणाओं
को प्रन्विष्टापित करना वाहना है जो दावि-धान के पैरों पर आधारित न
होकर सत्य, दायित्व और मानवीय त्वेदना पर आधारित हो। इसमें आधुनिकता
का बोध एक सर्वथा नव्य स्तर पर मिलता है और अनुभूति का छाया का स्फूर्ति-
कन उसे एक नव प्रयोग बनाकर प्रस्तुत करते हैं। वेना प्रवाह शैली का यह
उपन्यास नई दिशाओं को प्रशस्त करता है।

प्रेमचन्द की अगली रुढ़ी के रूप में सर्जनात्मक ऊर्जा और
रचनात्मक शक्ति से समन्वित व्यक्तित्व के रूप में उभरे समाजवादी एवं प्रगति-
वादी उपन्यासकार यशपाल का भी अपना वैशिष्ट्य है। 'दादा कामरेड' §1941§
'देशद्रोही' §1943§ 'गीला पार्टी' का §1946§ शोषित वर्ग के
शोषण के साक्षी बनकर आए। इन समस्त उपन्यासों में मार्क्सवादी विचारों के
प्रति प्रन्विष्टाना द्रष्टिगत होती है 'रामेश्वर शुक्ल 'अवल' का उपन्यास 'वदती
धूप' §1945§ में भी समाजवादी यथार्थ का निरूपण हुआ है। 'राणिय राधव'

1. डा० बबन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 363

प्र० 1973, लोक भारती प्र० ब्लाहाबाद।

2. वही, पृ० 368

के उपन्यासों 'घरोदे' [1946] एवं 'जिषाद मठ' में भी मार्क्सवादी समाजवादी दृष्टि ही उभरती है। इसी क्रम में 'भगवती वरुण वर्मा' का 'तीन वर्ष' [1936] जिसमें उपन्यास के सहज रूप के दर्शन होते हैं और 'छे-मेढ़े रास्ते' [1946] भी महत्वपूर्ण है। वस्तुतः 'छे-मेढ़े रास्ते' को 'कुरानी और नयी पीढ़ी की जीवन दृष्टियों में किसी सामंजस्य के अभाव की वास्तविकता कहा जा सकता है।¹ 'उपेन्द्र नाथ अक' के उपन्यास 'सिनारों के छेल' [1939] में मध्यवर्गीय नारी का यथार्थ चित्रण किया गया है।

इसके साथ ही एक समानान्तर ऐतिहासिक उपन्यास धारा का भी प्रवाह हो रहा था। 'वृन्दावन लाल वर्मा' ने [1929] में 'मुसाहिबख़' और 'की रानी' लिखकर इतिहासाश्रित उपन्यासों की परम्परा को बढ़ा दिया। 'प्रेमचन्द के पश्चात् मानव मनोविज्ञान को समझने एवं मानवीय स्वीदनाओं को गौरव प्रदानकर नवोन्थान की ओर साहित्य को दिशान्मुख करने का जिम्मा सत्य प्रयास 'वृन्दावन लाल वर्मा' ने किया उन्मा किसी अन्य उपन्यासकार से नहीं।² अनीन की गम्भीर अभिव्यक्ति राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति' [1942], जय यो धेप [1944] यशपाल के 'दिव्या' और आचार्य हजारी प्रसाद के बाण भट्ट की आत्मकथा [1946] में भी प्राप्त होती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् का युग मुख्यतया विद्रोह का युग रहा है। प्राचीन और नूतन मूल्यों से इन्कार और नवीन मूल्यों और प्रतिमानों की स्थापना के प्रयास स्पष्ट द्रष्टव्य हैं। सामाजिकता, मार्क्सवाद, समाजवाद, ऐतिहासिकता, मनोविश्लेषण, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद और अविकलता इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ रही हैं।

1. डा० योगेन्द्र बख्शी : हिन्दी और पंजाबी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 97

2. डा० सुरेश सिन्हा: हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ० 279, स० 196

इस युग के समाजवादी लेखकों ने एक ओर तो अपनी पुरानी मान्यताओं को बनाए रखा तो दूसरी ओर उन्होंने कठिण नये प्रयोग भी किये। सन् 47 के बाद के उपन्यासकारों ने व्यक्ति के सन्दर्भ में समाज का ज्ञान प्रारम्भ किया और सामाजिक मान्यताओं और आस्थाओं पर प्रहार करके व्यक्ति के मानवीय स्वरूप को उभारा।

इस युग में चतुरसेन शास्त्री द्वारा सर्जित उपन्यासों में धर्म पत्र [1952] हिन्दू मुस्लिम ऐम्य पर आधारित एक समर्थ उपन्यास है। उपन्यास का क्षेत्र अपनी _____ में 1925 से लेकर 1947 तक राष्ट्रीय आन्दोलनों की मुख्य घटनाओं को समाहित किये हुए है। भगवती प्रसाद बाज-पेयी ने निमन्त्रण [1947] ललने-ललने [1951] और यथार्थ से आगे 155 आदि उपन्यासों में प्रेम के व्यक्तिवादी स्वरूप को उभारा है। भगवती वरण वर्मा ने स्वप्नन्त में पश्चात् 'आखरी दाँव' [1950] अने खिलोने [1950] 'भूले बिसरे' चित्र [1955] और 'वह फिर नहीं आई' [1960] आदि उपन्यास लिखे। अने प्रमुख उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' में लेखक ने चार पीढ़ियों के स्पर्ष को उनकी बदलती आस्थाओं और मूल्यों को राजनैतिक परिदृश्य में, वाणी प्रदान की है। इनके उपन्यासों में व्यक्ति के सुख, दुःख और उसकी आशा - आकांक्षा का चित्रण मुख्य रहा है। व्यापक पैरु पर सामाजिक और व्यक्ति सम्स्याओं को उभारा गया है।

जेन्द्र ने 1956 में 'जय वर्धन' लिखा जिसकी विशेषता इसके शिल्प की नृत्नता में है। ज्ञानन्द्र जोशी ने मुषित्पथ [1950], सुबह के भूले' [1952], जिप्सी [1952] जहाज का पंछी [1956] आदि उपन्यास लिखे और मध्यवर्गीय सामाजिक समस्याओं को अपना मूल कथ्य बनाया।

यशपाल ने स्वप्नन्त के पश्चात् मनुष्य के रूप [1949] और बूठा-सब [1953] आदि उपन्यासों की सर्जना की। इन उपन्यासों में यशपाल

ने नई परिस्थितियों का अन्त ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में किया है। 'झूठा-सब' संज्ञान्ति कालीन भारत का प्रामाणिक दस्तावेज़ बन कर उभरा है। समसामयिक घटनाओं तथा परिस्थितियों के यथार्थपरा चित्रण का तार हो उठे हैं। उपन्यास में यथार्थवादी दृष्टि का सन्तुलित रूप प्राप्त होना है।

डॉ. रागीश राधव ने इस युग में सीधे सादे रास्ते §1951§ हज़ूर §1952§ तथा कल नर पुराण §1957§ आदि उपन्यास लिखे। 'रामेश्वर शुक्ल' अंश ने, नई हमारत §1947§ उल्ला §1947§, मरू प्रदीप §1951§ आदि उपन्यास लिखे। उषा देवी मित्रा ने नण्जीड़ §1955§ में आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होनी नारी की छवि निखारी है।

व्यक्ति और समाज के सन्तुलित सम्बन्ध को प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकार अमृताल नागर ने महाकाल §1947§ से0 बमिल §1955§ बूंदे और समुद्र §1956§ आदि उपन्यासों की रचना की। बूंदे और समुद्र में कथा का आधार व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध है जिसमें लेखक ने व्यक्ति के समाज के प्रति उत्तरदायित्व को स्वीकार किया है।

नागार्जुन अवलिकन्ना के उद्घोषक बनकर उभरे और उन्होंने रत्तिनाथ की चाची §1948§, बज्जनमा §1952§, नई पौध §1953§, बाबा बटेसर नाथ §1954§, दुःख मोहन §1954§ वरुण ने बेटे §1957§ आदि उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में जाविक जीवन का सशक्त चित्रण हुआ है।

धर्मवीर भारती ने गुनारों का देवना §1949§ और सुरज का सान्वाँ फोड़ा उपन्यास लिखे। इनका मूल विषय प्रेम कण्ठाएँ और सामाजिक जीवन का विकृतियाँ हैं।

भैरव प्रसाद गुप्त ने 1951 में 'मशाल', 1953 में गंगा भैया, 1956 में 'जंजीरें' और नारा आदमी, एतम् सन्ती भैया का लोरा'

आदि उपन्यास लिखे जिनमें समाजवादी जीवन दृष्टि को अभिव्यक्ति देने का प्रयास दृष्टिगत होता है। डा० लक्ष्मी नारायण जाल ने 'धरती की अग्नि' §1951§ ब्या घोंसला और पॉस §1953§, काले फूल का पौधा आदि उपन्यास लिखे जिनमें शोषण की प्रवृत्तियों और इसहाय नारी की विवशताओं को उजागर किया गया है। राजेन्द्र यादव ने 'ट्रेन जोलने हैं' §1952§, उखड़े हुए लोग §1956§, कुलटा §1958§, शह और मात §1959§ आदि उपन्यासों की रचना की, जिनमें विषय सामाजिक परिवेश और परिस्थितियों तथा जीवन, उसकी मान्यताओं, आस्थाओं से उखड़े हुए ऐसे व्यक्तियों का चित्रण है, समझोता ही जिनकी नियति बन चुका है।

फणीश्वर नाथ रेणु सशक्त आँवलिख उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके मुख्य उपन्यास मेला आँवल §1954§ परती परिकथा §1957§ हैं जिनमें अँवल विशेष के दुःख-दर्द, आशा विश्वासों संस्कृति और अन्तर्विरोधों का यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से गिरधर गोपाल का 'लाँदनी के कण्ठहर' §1954§, केशव चन्द वर्मा का 'काठ का उल्लू' §1955§, उदय शंकर भट्ट के 'नये मोड़' §1953§, सागर लहरे और मनुष्य' §1955§, लोक परलोक' §1959§ एक नीड़ दो पीछी §1959§ आदि उपन्यास भी महत्वपूर्ण हैं।

अज्ञेय इस युग में 'नदी के द्वीप' §1951§ उपन्यास की रचना की जिसमें पात्रों की काम कृष्णताओं का उद्घाटन ही प्रमुख रहा है।

इस काल में डा० देवराज ने पथ की खोज §1951§ बाहर भीतर §1954§ और अजय की डायरी §1960§ उपन्यास लिखे जिनमें स्त्री-पुरुष सम्बन्ध और व्यक्तित्व स्वात्मन्यय और सामाजिक तर्पण ही मुख्य कथ्य हैं। नरेश मेहता ने 'झुबने मानल' §1954§ में संस्कारों से ग्रसित नारी के जीवन की को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

प्रभाकर मावड़े ने इस युग में 'द्राभा' §1955, सावि-
 §1955 उपन्यास लिखे। इस युग में लिखा गया सर्वश्रेष्ठ दयाल सक्सेना का
 सोया हुआ जल §1955 भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि एक नवीन शिल्प
 में मानव के अवेग्न की गहराई का ज्ञान किया गया है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अनानेवाले उपन्यासकारों में
 सदा प्रथम आचार्य बन्तुरसेन शास्त्री का नाम आता है। केशजी की जगर वधू
 §1943, सोम नाथ §1954, कयं रक्षामः §1955 आदि उनके प्रमुख उपन्यास
 हैं। बृन्दाजन लालवर्मा ने इस युग में कनार §1949, मुगलनी §1950
 टूटे कटि §1954 अहिल्याबाई §1954, भुक्त विज्ञान §1957, माधव की
 निष्फिया §1957 आदि उपन्यास लिखकर इस परम्परा को सुदीर्घ बनाया।

यशपाल के 'अमिता' §1956 में भी ऐतिहासिकता के
 दर्शन होते हैं। ~~कये=अमिताभ=अमिताभ~~

ऐतिहासिक परिदृश्य को आधार बनाकर लिखा गया
 मुर्दा का टीला §1949, राधिय राधव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास है।
 इसमें लेखक की मार्क्सवादी धारणाएँ उभरकर सामने आयी हैं। अमृत लाल नागर
 का उपन्यास 'शत्रुज के मोहरे' §1956 में 19वीं शताब्दियों के भारत की
 राजनीतिक परिस्थितियों का विशद चित्रण हुआ है।

उपर्युक्त विवेक से स्पष्ट है कि आलोचकाल में हिन्दी
 उपन्यास के जहाँ यथार्थ के नये धारणों का स्पर्श करने का प्रयास किया है वहीं
 दूसरी ओर स्वतन्त्रता पूर्व की प्रवृत्तियों भी पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होती
 हैं। अंश के फलक पर लिखे गये उपन्यास निःसन्देह नयी संभावनाओं के सूचक हैं
 परन्तु अन्य क्षेत्रों में नव संभावनाएँ दृष्टिगत नहीं होती हैं हाँ कल्पित नव प्रयोग
 अवश्य मिलते हैं। बाँदनी के खण्डहर सोया हुआ जल, सतु जाल, काठ का उल्लू
 और कठुन शिल्प की दृष्टि से नयी संभावनाओं के आगार हैं।

पूर्व विवेच्य युगीन उर्दू उपन्यासों की परम्परा और विरासत

उर्दू उपन्यास-साहित्य में मोल्वी नज़ीर अहमद का नाम प्रथम उपन्यासकार के रूप में लिया जा सकता है। इन्होंने बरित्रों को उनके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करने के साथ ही साथ जीवन की समस्याओं, मानवीय सुख और दुःख को विषय बनाकर जीवन और निजी सर्वेक्षण में आनेवाले पात्रों को प्रस्तुत किया। उनका महत्त्व के कम इसी बात में नहीं है कि उन्होंने मुस्लिम महिलाओं के सुधार के लिए उपन्यास लिखे अपितु इस बात में भी है कि उन्होंने सर्व प्रथम उपन्यास-विद्या को उर्दू में प्रस्थापित किया। उनका पहला उपन्यास 'मिराज़ उल्स' [1969] उर्दू का प्रथम उपन्यास है जो उर्दू साहित्य के भित्ति पर नई दिशाओं का द्वार खोलकर नयी संभावनाओं का साक्षी बना है। 'बनातुन्नास', 'नोबतुन्नुस', 'फ़ामा मुन्ना' 'हन्नुतवत' 'जामी' इत्यादि इनके अन्य उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों में मानवीय समाज को बेठ बनाने और उन्हें सुधार लानेवाले तत्त्व प्रभुत्व मात्रा में विद्यमान हैं। उनका 'हन्नुतवत' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें उस व्यक्ति की जीवन-व्या है जो जीवों की संगत में अपनी सभ्यता और संस्कृति को विस्मृत करके मानव के स्थान पर कुत्तों और घोड़ों से प्रेम प्रारम्भ कर देता है। साथ ही उपन्यास में, भारत का आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक विखटन किस प्रकार हुआ, के भी सूत्र मिलते हैं।

नज़ीर अहमद ने उपन्यास को सुधार और उपदेश का माध्यम बनाया और एक ऐसी नयी विद्या का प्रारम्भ किया जिसे आधुनिक उपन्यास की पूर्व-पीठिका और आधार-विद्या कहा जा सकता है।

मोल्वी नज़ीर अहमद के परशद पं० रन्नाय सरगार ने 'फ़ामा जाज़ाद' लिखकर जीवन के विस्तार और विभिन्न समस्याओं पर हास्य

एवं व्यांगात्मक शैली में प्रकाश डाला है। "वह लखनवी शरत की बुराईयों पर पर्दा डालते हैं और न इनकी खूबियों को उभारते हैं, वह जैसा देखते हैं ब्यान कर देते हैं और अपनी ओर से वृद्धि नहीं करते।"¹ तत्पश्चात् उर्दू उपन्यास के साहित्यिक क्षितिज पर अब्दुल हलीम शरर का उदय होता है। उन्होंने 'फिरदौस-ए-बरी' और 'आगा सादिक की शादी' जैसे उपन्यास लिख कर उपन्यास कला को निखारा। "नज़ीर अहमद समाज सुधार और सरशार चरित्र-चित्रण और एक विशिष्ट वातावरण को प्रस्तुत करते हैं तो शरर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में मुसलमानों की पत्न की ओर अक्सर सभ्यता और समाज के विकास है।"²

इन उपन्यासकारों की परम्परा में सज्जाद हुसैन, 'अन्जुम' कसलमन्डी', 'मुन्शी सज्जाद हुसैन एडीटर अवध पंच', 'कारी सरफराज़ हुसैन', 'शशिदुल खेरी और 'मुहम्मद अली तबीब' के नाम आगम्य हैं।

कुछ समय के पश्चात् मिर्जा हादी रुस्वा' ने 'उमराव-जान-अदा' ॥1899॥ की सर्जना की जिससे उर्दू उपन्यास को एक व्यापक क्षितिज मिला और शिल्प के स्तर पर नवीन क्रान्ति हुई और नवीन संभावनाओं के द्वार खुल गये। "उमराव-जान-अदा" में विन्तन का एक नया अन्दाज और अधिक स्वच्छ उपन्यास की कल्पना प्राप्त होती है। यह उपन्यास इस युग का इतिहास कहा जा सकता है।"³ इसके द्वारा मिर्जा रुस्वा ने अपनी ही ओर अक्सर होते समाज का चित्रण प्रस्तुत किया। समग्र रूप में उमराव-जान-अदा उर्दू का पहला उपन्यास है जिसमें कला और जीवन एक दूसरे के हाथ में

1. सुहेल बखारी: उर्दू नाविल निगारी, पृ० 59

2. शारन्न अयूब उर्दू नाविल निगारी प्रेमचन्द के बाद, पृ० 45, सं० 1978
उर्दू प० नजीराबाद लखनऊ

3. वही, पृ० 47

हाथ डालकर कदम व कदम चल रहे हैं। जीवन कला का मार्ग - दर्शन करता है और कला जीवन को उसकी परिधि में रख कर भी उसको वह बुलन्दी देती है जहाँ साधारण दृष्टि नहीं पहुँचती उपन्यास बहुत संक्षिप्त है, जीवन के एक सीमित पक्ष को ही प्रस्तुत करता है, सुधार का दावा नहीं करता, व्यंग से दामन बँधाकर चलता है फिर भी कला के उच्च लक्ष्य को पूर्ण करता है और इसी-लिए उपन्यासों के लिए प्रकाश स्तम्भ है।¹ वस्तुतः उमराव - जान - अदा अन्तर्राष्ट्रीय माप दंडों पर खरा उतरनेवाला उपन्यास है। बीसवीं शती की उपन्यास कला के अधिकांश गुण एवं प्रवृत्तियाँ यौन से लेकर सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं तक 'उमराव-जान-अदा' में इन्ने कलात्मक रूप से उभरी कि यह महत्वपूर्ण उपन्यास बनकर उर्दू-उपन्यास की यात्रा का मील का पत्थर बन जाना है। इस युग के अन्य लेखकों में आगा शायर का स्थान भी महत्वपूर्ण है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रेणता के रूप में वे अत्य महत्व के अधिकांशी हैं। इनके उपन्यासों, 'नक्ली ताजदार', 'हीरे की कमी', 'नाहीद', और 'अरमान' में से 'हीरे की कमी' १९०० और 'अरमान' का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास का कलेवर लघु होने के पश्चात् भी, उसका चरित्र-चित्रण अपनी अगुठी विशिष्टता रखता है। उर्दू में चेतना प्रवाही शैली प्रथमतः इसी उपन्यास में उभरी है। इनके अन्य दूसरे विशिष्ट उपन्यास 'अरमान' में भी जोशी और नासिर के प्रेम को सशक्त मनोवैज्ञानिक रूप में ढाला गया है। उर्दू उपन्यास साहित्य में मनो-वैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारम्भ 'आगा शायर' से ही माना जा सकता है। नयाज़ फ़ल्हुरी के उपन्यास 'शहाब की सरगुज़रत' का भी अपना अलग अंदाज है। उन्होंने इसके माध्यम से न मात्र उपन्यास को एक नया धरात्ल दिया अपितु वे उपन्यास कला के क्रान्तिकारी रुझानात् के आदृत भी बने। विद्रोही चेतना के आदृत के रूप में 'किशन प्रसाद कोल' का नाम भी महत्वपूर्ण है। इनके

उपन्यास 'शामा' में एक विशिष्ट उदासीनता दृष्टव्य है जो नग्न सामाजिक यथार्थ की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इनके उपन्यास में सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य भी दृष्टिगत होता है। विद्रोही चेतना ने उपन्यास को महत्वपूर्ण बना दिया है।

अली अब्बास हुसैनी ने अपना प्रथम उपन्यास 'सर सैय्यद अहमद पाशाया काफ़ की परी' [1979] में लिखा जिसमें कल्पना के पंखों पर तिरती काल्पनिक प्रेम की दास्तान ही मिलती है। 'मिर्जा अब्बास हुसैन होश' ने राजनैतिक पक्ष को प्रस्तुत किया। इनके उपन्यासों में 'रब्त-जब्त' और 'अफ़साना नादिर जहाँ' आफ़िक़ प्रसिद्ध हैं पर उनके उपन्यास 'अलमैसून' की विशिष्ट सामाजिक और राजनैतिक चेतना उभारने में सामने आती है। मुहम्मद सज्जाद मिर्जा बेग़ देहलवी ने भी 'दिलफ़िगार' और 'तमन्ना-ए-दीद' दो उपन्यास लिखे। इनके उपन्यास राजनैतिक और शैक्षणिक गतिविधियों पर प्रकाश डालनेवाले उपन्यास हैं। उपन्यास में सामाजिक परिवर्तन को प्रस्तुत करने की दृष्टि से 'मुहम्मद आजाद हुसैन अलमैसून ब हुमायुं मिर्जा' का उपन्यास खास कलकत्ता भी महत्वपूर्ण है।

उर्दू उपन्यास के उषाकाल में ही अनेक महिलाओं ने उपन्यास सृजन प्रारम्भ कर दिया था और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही महिलाओं ने उपन्यास लेखन में महत्वपूर्ण भाग लिया। प्रारम्भिक उपन्यास लेखिकाओं में सुगरा हुमायुं मिर्जा नज़र सज्जाद हेदर तैय्यबा बेग़म आदि महत्वपूर्ण हैं इन सभी पर 'नज़ीर अहमद' से आफ़िक़ राशिदुल खेरी का प्रभाव पड़ा है।

प्रेमचन्द का उदय, उर्दू के उपन्यास साहित्य क्षितिज पर भी नव संभावनाओं को आगार के रूप में हुआ था। वह एक सम्पूर्ण युग का प्रतिनिधित्व करने दृष्टिगत होते हैं। 'प्रेमचन्द की सम्पूर्ण वित्त-सम्पदा

इस वास्तविकता का प्रमाण है कि उन्होंने समाज के सर्वाधिक निर्बल और शोषित वर्ग पर अन्यायी वर्गीय प्रभुत्व को स्वीकार न करने के लिए सारे जीवन भर पुर संघर्ष किया है।¹ इनके उपन्यासों में विभिन्न रुझान उभरकर सामने आए हैं। इनके प्रथम उपन्यास के सम्बन्ध में भी अनेक भ्रम हैं परन्तु इनके उपन्यासों में से "किस्ना" को १९०२ ई० में 'हम उर्मा व हम स्वाब' को १९०४ ई० में और असरारे मद्याबिद १९०५ में प्रकाशित मानना अधिक तर्क संगत होगा।² इनका उपन्यास 'असरारे मद्याबिद' भारत में समाज सुधार के प्रयत्नों की ओर ईगित करता है। इसी क्रम में 'जल्बए-इस्सार' का नाम भी आता है। इनके अन्य उपन्यासों की जिन्होंने नवयुग के द्वार खोले, विवेचना हिन्दी उपन्यासों के प्रसंग में की ही जा चुकी है। प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों में 'काजी अब्दुल गफ्फार' मजनु गारख पुरी' अज़ीम बेग चुगताई, लाभ अहमद' आदि अनेक लेखकों का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने पर्याप्त रूप से पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण किया। 'काजी अब्दुल गफ्फार ने 'लेला के खुत्त' १९३२ 'मजनु की डायरी' १९३४ दो उपन्यास लिखे। अज़ीम बेग चुगताई ने हास्य उपन्यासों की परम्परा को बनाए रखा परन्तु इनके उपन्यासों में विद्रोह का स्वर भी मिलता है। 'फैयाज़ अली' ने 'शमीम' और 'अख़्तर' दो प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। 'अख़्तर' के पात्रों का चरित्र जीवन्त और सजीव रूप में चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं पर वे साधारण सामाजिक और धार्मिक सिद्धान्तों को अस्वीकृत करते नज़र आते हैं। इस युग में उर्दू में जासूसी उपन्यासों का प्रारम्भ भी हुआ और 'ज़फ़र उमर' ने जासूसी उपन्यासों की सर्जना

१. अमृतराय शान्ति के योग्य प्रेमचन्द, पृ० ४२

२. डा० शैलेश जेदी प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा नवमूल्यांकन, पृ० १०३, सं० १९७८

की लेकिन काल्पनिक और जीवन से कटे होने के कारण मनोरंजक होने के पश्चात् भी इन उपन्यासों को विशेष साहित्यिक महत्ता न मिल सकी ।

इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियों सामाजिक और धार्मिक आस्थाओं से विद्रोह और इन्कार की थी । सम्पूर्ण परिवेश और परिस्थितियों ने एक प्रकार के असन्तोष और उदासीनता की पृष्ठभूमि तैयार की थी । नए मूल्यों के विकास और वैज्ञानिक प्रगति ने पुराने विश्वास में दरारें डाल दी थी और जीवन के महत्व को घटा दिया था । इसीकारण इस युग का साहित्य भी कटु वास्तविकताओं के नग्न धरात्तल पर खड़ा नज़र आता है । प्रथम महा-युद्ध ने भी साहित्य पर दूरगामी प्रभाव छोड़े और एक नयी पीढ़ी का सर्जन हुआ जो पुराने मूल्यों और आस्थाओं को नकार कर नये मूल्यों की खोज और उनके प्रतिष्ठापन की ओर अग्रसर हुई । यह वह युग था जब "सम्पूर्ण प्राचीन मूल्य टूटने और बिखरने लगे थे, यद्यपि अभी नवीन मूल्यों की निर्मित नहीं हुई थी।" ¹ नए मूल्यों की खोज में प्रवृत्त साहित्यकार मार्क्स और कम्युनिज़्म की ओर बढ़े। ऐसे प्रगतिशील लेखकों का पहला वर्ग 1935 में कुछ भारतीय विद्यार्थियों ने लंदन में स्थापित किया । भारत में 1936 में प्रगतिशील लेखकों का पहला अधिवेशन हुआ ।

प्रगतिशील आन्दोलन का प्रमुख वैशिष्ट्य इसका यथार्थ चित्रण रहा है । 'मार्क्स' और 'फ्रायड' की धारणाओं के फलस्वरूप व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना का ह्रास हुआ क्योंकि इन विचारकों ने परिस्थितियों, परिवेश और समाज को व्यक्ति की चेतना का निर्माण करनेवाला बताया था । यौन समस्या को भी इस युग में अपनी परिधि में लिया गया और चेतन एवं अच-चेतन के आधार पर व्यक्तित्व को समझने का प्रयास किया जाने लगा ।

1. एच0वह0 रूथ : इंग्लिश लिटरेचर एण्ड दि आइडियलिज़्म इन दि रेवेन्टियथ सेन्युरी, पृ० 3

प्रेमचन्द के पश्चात् उर्दू उपन्यास के क्षितिज पर जो उपन्यासकार उभरे, वह सब प्रगतिशील आन्दोलन से संबद्ध हैं। उन्होंने जीवन मूल्यों को अपने अनुभवों और सर्वेक्षण से देखा परखा और प्रस्तुत किया है।

'सज्जाद जहीर' ने 1937 में 'लंदन की एक रात' उपन्यास लिखा। इसका वैशिष्ट्य विषय - वस्तु की अपेक्षा शिल्प के कारण अधिक है। यह उर्दू का सर्व प्रथम उपन्यास है जो पूर्ण रूपेण वेत्ना - प्रवाही शैली में लिखा गया है। उपन्यास भारतीय शिक्षार्थियों का एक निःस्वार्थ और कलात्मक किर प्रस्तुत करता है जो मानवता और सम्पूर्ण जाति का दर्द बनकर उभरता है। वस्तुतः लंदन की एक रात नयी पीढ़ी के विद्यार्थियों के मानसिक उद्वेग और बिखराव की कथा है। इसमें स्त्री को उसकी प्राकृतिक भावना और एहसास के साथ प्रस्तुत किया गया है और नवीन प्रवृत्तियाँ अपनी सम्पूर्णता में उभरकर सामने आयी हैं। यह उपन्यास उर्दू उपन्यास यात्रा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव सिद्ध हुआ है।

अजीज अहमद को इस युग के उपन्यासकारों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने शहर के पेचीदह वर्गीय जीवन के भावनात्मक और मानसिक बिखराव पूर्व और पश्चात् के संघर्ष और मध्य वर्ग के परिवर्तित होते हुए मनोविज्ञान को बड़ी सुन्दरता और बेबाकी से प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यासों 'हक्स' मर-मर और खून', गुरेज और 'आग' में से गुरेज 1942 और 'आग' का विशेष महत्व है। इनमें उनका कलाकार पूर्ण रूप से उभरकर सामने आता है। 'गुरेज' लंदन की एक रात से प्रभावित लगता है। फ्रायड के विस्म का भी स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। यौन को बड़ी स्वतन्त्रता से प्रस्तुत किया गया है। यह प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के मध्य के युग की कथा है जिसमें आर्थिक विपन्नता और यौन का प्राधान्य स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

वस्तुतः अजीज़ अहमद का प्रमुख वैशिष्ट्य मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, के उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत करने में है। "अजीज़ अहमद का टेक्नीक पर काबू प्रशंसा के योग्य है। इनके अध्ययन और ज्ञान ने इस विषय में इनकी पूरी सहायता की और उर्दू उपन्यास का टेक्नीकी स्तर उन्होंने बहुत उच्च किया।"¹

प्रगतिशीलता के उद्घोषक कृष्णचन्दर का भी इस युग में प्रमुख स्थान और महत्व है। प्रगतिशीलता इनके उपन्यासों में उद्देश्य बनकर उभरी है। इनके प्रत्येक उपन्यास का अंदाज़ भिन्न है। उनमें कर्म और संघर्ष दृष्टिगत होता है और कर्म और संघर्ष की कशम-कश में जीवन-नग्न नज़र आता है। उन्होंने 1943 में 'शिकत' उपन्यास लिखा जो आधुनिक उपन्यास कला में विशिष्ट महत्व का अधिकारी है। यह उपन्यास आधुनिक युग की बिडम्बनाओं, सत्रास और व्यथा की अपनी पूर्णता में उकेरता है। इसमें काश्मीर के ग्रामीण जीवन का अंश हुआ है। इसकी महत्ता नई और पुरानी पीढ़ियों के वैचारिक संघर्ष को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ प्रकृति के सौन्दर्य और मानव-समाज की बदसूरती को प्रस्तुत करने में भी है।

'छाहीम जलीस' भी इस युग के प्रमुख लेखक हैं। उनका उपन्यास चोर बाज़ार [1946] उर्दू के श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक है। इसमें जीवन को पूर्ण इमानदारी के साथ प्रस्तुत किया गया है। 'छाहीम जलीस' ने युगीन मानव के निराशावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। "चोर बाज़ार" नशा और नींद लाने वाली पुस्तक नहीं जागृत करनेवाली पुस्तक है। अपनी कड़वाहट के बावजूद भी यह जीवन की संध्या नहीं उषा का प्रारम्भ है।"²

1. डा० अहमद फारूक उपन्यास का शिल्प, पृ० 173

2. कृष्णचन्दर - त्थारूफ - चोर बाज़ार, पृ० 8

'इस्मत चुगताई' भी इस युग के उपन्यासकारों में इस दृष्टि से वैशिष्ट्य की अधिकारिणी है कि उन्होंने मुस्लिम मध्यवर्गीय घरानों की पर्दानशीन लड़कियों की मनोवैज्ञानिक उलझनों और उनसे निःसृत होनेवाली समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इनका महत्वपूर्ण विषय यौन है। उनके उपन्यासों में व्यंग की चुटकी के साथ ही साथ 'फ्रायड' और 'मार्क्स' की चिन्तन पद्धति का स्पष्ट प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। उपन्यासों की भाषा साधारण और चलताउ है। उनका प्रथम उपन्यास 'जिद्दी' है जो एक रोमानी ब्रासदी है और सुधारवादी आंदोलन का पर्याप्त प्रभाव उस पर दिखाई देता है। 'मासूमा' समाज में व्याप्त आर्थिक वैषम्य को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। 'दिल की दुनिया' में जागीरदार वर्ग की एक वास्तविकता के स्केत मिलते हैं। इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'देही लकीर' [1946] का अपना एक अलग वैशिष्ट्य है। इसमें 'फ्रायड' के चिन्तन के प्रकाश में एक ऐसी लड़की 'शम्सन' की मनोवैज्ञानिक और यौन उलझनों का अनुभव और अध्ययन किया गया है जो बचपन से इन्हीं उलझनों में आबद्ध है। इसमें एक मार्डन युवती का पूर्ण चित्रण मिलता है। अंदाज़ बेबाक है। 'फ्रायड' और मार्क्स' के चिन्तन में सामंजस्य उत्पन्न करना कठिन कार्य है परन्तु 'इस्मत चुगताई' ने इन दोनों चिन्तन पद्धतियों के सामंजस्य द्वारा अपने पात्रों के विकास को श्रेष्ठ ढंग से प्रस्तुत किया और जीवन की विभिन्न वास्तविकताओं को उकेरा है। इस प्रकार 'देही लकीर' उर्दू के श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक बन गया है।

'सआदत हसन मिन्टो' ने भी 'बगैर उन्वान' नामक लघु उपन्यास 1947 में लिखा था। मनोवैज्ञानिक दशाओं के चित्रण में यह उपन्यास भी पूर्ण सफल रहा है। उपन्यासकार ने एक युवक की भावनात्मक और मानसिक जीवन के अन्तर्द्वन्द्व को अपने उपन्यास का विषय बनाया है लेकिन इस लघु उपन्यास को वह महत्व प्राप्त न हो सका जिसका वह अधिकारी है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् उर्दू उपन्यास का क्षितिज भी नेराश्व और पलायन का साक्षी बना । स्वतन्त्रता प्राप्त करने के साथ ही साथ होनेवाली विभाजन की ब्रासदी ने एकाएक उर्दू उपन्यासकारों को किर्कलव्यविमूढ़ कर दिया । तात्कालिक रूप में जो भी उपन्यास साहित्य क्षितिज पर उभरे वह मात्र सामयिक परिस्थितियों एवं विभाजन की ब्रासदी को ही अपना आधार बनाकर लिखे गये । विभाजन की ब्रासदी को इस युग के अनेक उपन्यासकारों ने अपना विषय बनाया । विभाजन की घटनाओं से प्रभावित होकर एम अल्लम ने रक्से इब्नीस रशीद अख्तर ने 15 अगस्त , कैस रामपुरी ने 'खून', बे आब्र और 'फिरदोस', रईस अहमद जाफरी ने 'मुजाहिद', 'नसीम' हेजाज़ी ने 'खाक और 'खून', और रामानन्द सार ने 'और इन्सान मर गया' जैसे उपन्यासों की सर्जना की परन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण से इन उपन्यासों को कोई विशिष्ट महत्ता प्रदान नहीं की जा सकती क्योंकि सामयिक तत्व ही इनके मूलधार रहे हैं ।

सन् साठ तक के गम्भीर उपन्यासों में अज़ीज अहमद का उपन्यास ऐसी कुन्दी ऐसी परस्ती' 1942 , डा0 अब्दुल फास्की का उपन्यास 'शामे अवध' [1948] कर्स्तुलऐन हेदर के उपन्यास मेरे भी सनम खाने' [1949] , सफीन - ए अमे दिल [1953] और आम का दरिया [1959] तथा शोकत सिद्दीकी का उपन्यास 'खुदा की बस्ती' [1960] आदि मुख्य हैं ।

यह समस्त उपन्यास जीवन में होनेवाले परिवर्तन का सम्पूर्णता के साथ सर्वेक्षण करते हैं और इन समस्त उपन्यासकारों ने एक युग के मिटने, एक सभ्यता के समाप्त होने का भरपूर अंदाज में जायजा लिया है । इन्होंने प्रत्यक्ष रूप से विभाजन को विषय नहीं बनाया है परन्तु वह अपने समग्र रूप में सम्पूर्ण परिवर्तन और जीवन की गति का अंग बनकर जीवन-मूल्यों में होनेवाले परिवर्तनों की ओर इंगित करता है जिसका प्रभाव अत्यन्त तीव्र है । वस्तुतः स्वतन्त्रता के पश्चात् एक नये युग की प्रारम्भ हो रहा था, इसीलिए इन उपन्यासकारों ने इस संसार को एक बार पलट कर देखा जो मिट रहा था और मिट चुका था ।

जानवेन के अनुसार "जब जीवन में परिवर्तन आता है और इसका ढाँचा बदलने लगता है तो साहित्यकार इस परिवर्तन को दृष्टि में रखकर इस बात का अध्ययन करता है कि पिछले युग के कौन से मूल्य महत्वपूर्ण थे, कौन सी प्रथाएँ सम्मान योग्य थीं और कौन सी पुरानी और व्यर्थ थीं। प्राचीन मूल्यों में से किस्को अपनाया जा सकता है और किन को रोकने की आवश्यकता है कौन सी बातें समाज के लिए लाभदायक हो सकती हैं और कौन सी हानिकारक।" इन तीनों बातों का अध्ययन शोकत सिद्दीकी के 'खुदा की बस्ती' को छोड़कर अन्य उपन्यासों में बड़े ही भरपूर अंदाज में किया गया है और अतीत को इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि उसके दोनों पक्ष - अकारमय और प्रकाशित सामने आ जाते हैं। जीवन का यही प्रस्तुतीकरण इन उपन्यासों को महत्व प्रदान करता है।

डा० मुहम्मद अहसन फारूकी ने 'शामे अवध' में गहराई के पश्चात् के लखनऊ की सामाजिक परिस्थितियों को बड़े ही यथार्थपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है। 'फसाना-ए-आजाद' के बाद यह वह प्रथम उपन्यास है जिसमें लखनऊ की आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। इसमें जीवन के विभिन्न उतार-चढ़ाव, सांस्कृतिक बिखराव और लखनऊ के जीवन के विभिन्न पहलु उभरकर सामने आते हैं।

अज़ीज अहमद ने मानव में स्वतन्त्रता की वेना जागृत करने का प्रयत्न किया है। उनके उपन्यास ऐसी कुलन्दी ऐसी परस्ती का नायक एक मध्यवर्गीय युवक है जो अनेक मानसिक कुण्ठाओं और तनावों से ग्रस्त है परन्तु फिर भी वह स्वतन्त्र परिवेश में जीने की आकांक्षा रखता है। वह सेक्स कुण्ठाओं से ग्रस्त नहीं है।

कुरुतुल ऐन हेदर ने 'मेरे भी स्नम खाने' और सफीन-ए-गमेदिल' में समाज के उच्च तथा मध्य वर्गीय जीवन का कलात्मक चित्रण किया है। 'मेरे भी स्नम खाने' पर वेत्मा प्रवाही धारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। उर्दू में वेत्मा प्रवाही धारा का स्पष्ट प्रारम्भ सज्जाद जहीर की 'लंदन की एक रात' से होता है। सज्जाद जहीर जेम्स ज्वइस्स के 'यूलिसिस' से प्रभावित हैं जबकि कुरुतुलऐन हेदर पर वरजीनिया वुल्फ का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। परन्तु वरजीनिया वुल्फ की भाँति हेदर के पात्रों और चरित्रों का प्रभाव अधिक देर तक स्थिर नहीं रहता। 'मेरे भी स्नम खाने' के पात्र इन्सान न होकर स्नम {बुल} से दृष्टिगत होते हैं जिन पात्रों में विशेषताएँ भी हैं उनको भी हेदर उभार नहीं सकी है। 'रख शन्दह' जो इस उपन्यास की हीरोइन कही जा सकती है अपना कोई महत्वपूर्ण व्यक्तित्व नहीं रखती। वह इन्मी खूब सूरती से रूमानी अंदाज में प्रस्तुत की गयी है कि एक बुल मालूम होती है जिसे कुरुतुल ऐन ने तराशा है पूजा की है और फिर तोड़ दिया है।¹ इस प्रकार इनके पात्रों में अधि सजीवता नहीं है फिर भी दार्शनिक स्थलों, युग चित्रण और राजनैतिक परिस्थितियों के चित्रण से वह कभी पूरी हो गयी है। उपन्यास के दूसरे भाग में आधुनिक मानव की मूर्तर रूप में चित्रित हुई है। साथ ही बुर्जुवा वर्ग के विघटन की यथार्थ अभिव्यक्ति से उपन्यास का महत्व और भी बढ़ गया है। 'कुरुतुल ऐन' में कुदरती योग्यताएँ बेहन्तहा हैं योग्यता के लिहाज़ से भी वह स्त्री उपन्यास लेखिकाओं में सबसे आगे है कलात्मक वेत्मा भी उनके यहाँ मिलती है और हमें उनकी जहानत की याद देनी पड़ती है।²

1. मुमताज शीरी लेख 'मदार' में बम्बई 1962 ई०

2. डा० मुहम्मद अहमद फास्की 'तखलीफी अदब और नानल', पृ० 171

उनका उपन्यास 'सफीनए गमे दिल' में कोई वैशिष्ट्य दृष्टिगत नहीं होता और वह उनके अन्य उपन्यासों की तुलना में कहीं दुर्बल है 'हेदर का आग का दरिया' उर्दू उपन्यास के फलक पर विशिष्ट महत्व का अधिकारी है क्योंकि इसके द्वारा कुरुतुलएन हेदर ने उर्दू उपन्यास को चिन्तन एवं कला की अत्यन्त अभावों से परिवर्तित कराया । यह उपन्यास वर्जीनिया वूल्फ के 'ओर लेडो' से बहुत प्रभावित जान पड़ता है । "इसका केन्वस बहुत विस्तृत है और हिन्दुस्तान सांस्कृतिक इतिहास के दस हजार सालों को अपने दामन में समेटे हुए है । इसके साथ इसमें ऐतिहासिक दर्शन, साहित्य और सौन्दर्य बोध का बड़ा हसीन समन्वय मिलता है ।"¹

उपन्यास में दरिया को समय के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया है और वेना प्रवाही शैली के अनुरूप पात्रों के मानसिक उतार चढ़ाव और अन्तर्बन्ध को प्रभुता दी गयी है । "उपन्यासकार ने उपन्यास को तीन सांस्कृतिक युगों में विभाजित किया है और प्रत्येक युग के प्रगतिशील युवकों को उपन्यास की मुख्य पात्र बनाया है जिन्होंने प्राचीन रुढ़ियों को खर्ष किया । "आग का दरिया में हिन्दुली इतिहास के विभिन्न युगों का प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास वैदिक काल से प्रारम्भ होकर मार्य-परिवार के दोरे कुम्भ, मुगलों के युग, अजीजी साम्राज्य और फिर देश के विभाजन की घटनाओं के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में भारतीय संस्कृति को प्रस्तुत करता हुआ समाप्त हो जाता है । इसमें हिन्दुस्तान में रहनेवाली सभी जातियों के जीवन और उनके रहन-सहन और उन्नति-अवन्नति की कथा कही गयी है । हेदर ने 'आग का दरिया' में मानव की कथा कही है जो हर युग में प्रलय का सामना करता रहता है ।"²

1. उर्दू नाबिल प्रेमचन्द के बाद हारनन अय्यूव, पृ० 175, उर्दू प० त्सिक भाग लखनऊ सं० 1978

2. उर्दू नाबिल प्रेमचन्द के बाद, पृ० 179

सम्पूर्ण उपन्यास दार्शनिक समस्याओं राजनीतिक वाद-विवादों और मनोवैज्ञानिक गुणधर्मों की समन्वित झाँकी प्रस्तुत करता है। वस्तुतः कुरुतुल ऐन हेदर ने मनः सत्त्वों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए ही शावनाओं को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। "उर्दू नाविल निगदरी में हेदर प्रथम व्यक्ति है जिन्होंने उपन्यास को आधुनिक कला की विशेषताओं से सुसम्पन्न किया। कुरुतुल ऐन हेदर की मानसिक और कल्पना से इन्कार कठिन है। 'आग का दरिया' उर्दू उपन्यास में अजीम शाहकार की तरह चमकेगा।"

'खुदा की बस्ती' पहला उपन्यास है जो पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के पश्चात् साहित्य फलक पर उभरा। इसकी महत्ता का कारण यह है कि इसमें निम्न और मध्य वर्गीय जीवन और उनके चरित्रों का कलात्मक अंकन किया गया है।

उपन्यास एक निर्धन और परिश्रमी घराने के सामान्य जीवन के क्रिया-व्यापारों से प्रारम्भ होता है जिसने विभाजन के बाद एक नये देश में अपने स्थायित्व के प्रयास प्रारम्भ कर दिये हैं। उपन्यास में सामाजिक यथार्थवाद को सजीव चित्रण मिलता है। लेखक ने तटस्थता और पूर्ण लेखकीय ईमानदारी से पाकिस्तान के शहरी जीवन के समस्त पहलुओं को उधेड़ा है। यह उपन्यास पाकिस्तानी समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। खुदा की बस्ती वस्तुतः मनुष्यों की बस्ती है जितमें समाज को अपने रंगारंग रूप में प्रस्तुत किया गया है। जहाँ भी लेखक ने जीवन की कुण्ठाओं, अभावों के बीच पत्नी जिन्दगी तथा निम्न मध्य वर्गीय व्यक्तियों की जीती जागती तस्वीरें अंकित की हैं वहाँ पर उनपर प्रेमवन्द की भाँति ही यथार्थवाद का गहरा

प्रभाव दृष्टिगत होता है। 'यद्यपि यह उपन्यास गोदान की महानता को न पहुँच सका परन्तु इसका लेखक निस्सन्देह गोदान से बलुन्दतर उपन्यास लिखने की योग्यता रखता है।'¹

'मुँदा की बस्ती' के सर्जन के साथ ही उर्दू उपन्यास में एक नये युग का प्रारम्भ होता है और उर्दू उपन्यास अतीत के मोह को त्याग कर वर्तमान की ओर मुड़ता दृष्टिगत होने लगता है।

पूर्व विवेच्य युगीन हिन्दी-उर्दू उपन्यास: एक दृष्टि

भारत में हिन्दी और उर्दू हिन्दुस्तानी भाषा की दो शैलियों के रूप में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई हैं। भारत के राजनैतिक, आर्थिक सामाजिक परिवेश के विघटन और अन्य परिस्थितियों का दोनों साहित्यों पर लगभग समान रूप से प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि हिन्दी और उर्दू दोनों के साहित्यिक क्षितिज पर उपन्यास - विधा का प्रस्फुटन लगभग एक ही समय में हुआ और दोनों साहित्यों में ही उपन्यास एक स्वतन्त्र और सशक्त विधा के रूप में उभरा। हिन्दी उपन्यास के शुरुआती काल में जहाँ एक ओर सुधारवादी, आदर्शवादी उपन्यास लिखे गये वहीं दूसरी ओर मनोरंजन और शुद्ध मनोरंजन के साथ बुद्धि को कमस्कृत कर देने वाले ऐयारी, तिलस्मी उपन्यास भी लिखे गये। उर्दू में भी उपन्यास - साहित्य का प्रारम्भ महिलाओं के सुधार और उनके सम्मुख आदर्श प्रतिपादन की दृष्टि से ही किया गया परन्तु उनको 'मिर्जा हादी हस्वा' के रूप में शीघ्र ही एक ऐसा स्तम्भ प्राप्त हो गया जिसने आधुनिक उपन्यास के स्वरूप को निर्धारित किया। वस्तुतः 'उमराव-जान-अदा के अंश

1. डा० मुहम्मद अहमद फारनकी लखनौ की अदब और नाविल, पृ० 171

में विद्यमान संभावनाओं से नवीन दिशाओं का पथ प्रशस्त हुआ और उर्दू में उपन्यास का स्वरूप निखर कर सामने आया । इस युग में उर्दू में आदर्शवादी रोमानी और सुधारवादी सर्जनाएँ तो अवश्य हुईं पर तत्समयी उपन्यासों का लगभग अभाव सा ही रहा । किशोरी लाल गोस्वामी 'और सज्जाद हुसैन' ने 'प्रेमचन्द' की पूर्व-पीठिका के रूप में सामाजिक समस्याओं में अपने को रमाया-त्पाया पर उनको इस दृष्टि से पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो पायी । 'पं० रत्न नाथ सरशार' के फ़साना-आज़ाद में 'डान क्विकजो' के एक निश्चित प्रभाव और समानता को स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है । आज़ाद का अज्ञानी, अक्षय, कायर पर वास्तविक मित्र 'छाजी' साँचो-पाँजा की अनुभूति करता है परन्तु अन्य सन्दर्भों में सरशार के पात्र 'सरवेन्टी' के पात्रों के विरोधी हैं । जहाँ 'डान क्विक जोट' प्राचीनता का उद्घोषक है, वहीं आज़ाद आत्म विश्वासी स्पष्ट विचारक और नवीनता का उद्घोषक है । 'हिन्दी' के प्रारम्भिक उपन्यासों में ऐसा पार्श्ववर्त्य प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता ।

हिन्दी और उर्दू उपन्यास- विधा को वस्तुतः पूर्ण उत्कर्ष प्रेमचन्द युग में ही प्राप्त हुआ प्रेमचन्द ने उपन्यासों को न मात्र आधुनिक बनाया प्रत्युत वे नवीन सोपानों के मार्ग दृष्टा के रूप में भी उभरे । प्रेमचन्द युग में प्रेमचन्द के समानान्तर ही अनेक विशिष्ट हिन्दी उपन्यासकार उभरे और जीवन का वैविध्य उभर कर सामने आया । फलतः हिन्दी - उपन्यास को एक व्यापक फलक प्राप्त हुआ परन्तु उर्दू उपन्यास-क्षेत्र पर इस युग में अन्य कोई ऐसा उपन्यासकार दृष्टिगत नहीं होता जिसे नव चेतना का अद्भुत कहा जा सके ।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य के धरातल पर जीवन की विविधता और यथार्थ के अनेक रूप उभरे । इस युग में शिल्प की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास को वैभव और प्रौढ़ता प्राप्त हुई । 'मार्क्स' और 'फ्रायड' के गम्भीर प्रभाव ने हिन्दी उपन्यास को नव आयाम दिए और जेनेन्द्र जोशी और

अज्ञेय ने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व आत्म पीड़न और निराशाबाद के मध्य से यात्रा करने हुए सन्वास चतुरन और आत्म-पीड़न की परिस्थितियों में भी संघर्ष की विद्रोही उद्घोषणा करके शिल्प के स्तर पर नवक्रान्ति की। मार्क्सवादी समाजवादी लेखकों ने आदुत के रूप में यशपाल ने भी महत्वपूर्ण प्रश्नों की ओर उपन्यास को मोड़ा। ऐतिहासिकता के उन्नायक वृन्दावन लाल वर्मा भी नयी राहों के साक्षी बने। 'रागिण राघव' हजारि प्रसाद द्विवेदी आदि ने भी अतीत और वर्तमान को जोड़ने का श्रेयस्कर कार्य कर उपन्यास विधा को समर्थ और सशक्त बनाने में पर्याप्त योदान दिया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् एक ओर पुरानी मान्यताएँ और मूल्य विकास की ओर अग्रसर हुए तो दूसरी ओर कल्पित नये प्रयोग भी किये गये और मानवीय स्वरूप को उभारने का प्रयत्न अपनी सम्पूर्णता में प्रारम्भ हुआ। आचार्य तुरसेन शास्त्री, भगवती प्रसाद बाजपेयी जेनेन्द्र, यशपाल, रागिण राघव, रामेश्वर शुक्ल अवल, उषा देवी मित्रा, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, धर्मवीर भारती, भैरव प्रसाद गुप्त, डा० लक्ष्मी नारायण लाल, राजेन्द्र यादव, फणीश्वरनाथ रेणु, गिरधर गोपाल उदय शंकर भट्ट, अज्ञेय, डा० देवराज, नरेश मेहता, प्रभाकर माक्वे, वृन्दावन लाल वर्मा, मोहन राकेश, आदि इस युग के सशक्त हस्ताक्षर हैं। इन्होंने जहाँ एक ओर अपनी भूमि से जुड़े रहने का प्रयत्न किया वहीं दूसरी ओर यथार्थ के विभिन्न धरातलों का स्पर्श करने का स्पष्ट प्रयास भी दृष्टिगत होता है। कथ्य और शिल्प में आनेवाला क्रमिक बदलाव भी दृष्टिग्य है।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास उपदेश सुधार, मनोरंजन और चमत्कार के मध्य अपनी राह बनाता हुआ प्रेमचन्द युग में जीवन से सम्प्रकृत हो गया और उसकी विकासशील सर्जन द्वारा मनोविश्लेषण, समाजवादी विचारधारा मनोविश्लेषण, समाजवादी विचारधारा ऐतिहासिकता और अतीत की गम्भीर

अभिव्यक्ति के आरोह-अवरोह पर तिरती निरन्तर प्रगति की ओर आसर होती रही और स्वान्त्र्योत्तर काल में यथार्थ के विभिन्न आयामों का सर्जन करने में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई ।

उर्दू उपन्यास-साहित्य में भी प्रेमचन्द के पश्चात् अनेक मोड़ आये प्रगतिशील आन्दोलन से सम्बद्ध विचार धाराओं और फ्रायड के चिन्तन प्रभाव ने प्रेमचन्द्रोत्तर उर्दू-उपन्यास को एक नवीन शिल्प प्रदान कर दिया था और वह सज्जाद ज़हीर अजीज़ अहमद , क़सन वन्दर इब्नाहीम ज़लीस मन्टो 'और 'इस्मत चुगताई' के रूप में नवीन आयाम प्राप्त कर रहा था ।

उर्दू - उपन्यास-साहित्य में सर्वाधिक खटकनेवाली बात यह है कि प्रेमचन्द के बाद जितने भी उपन्यासकार साहित्यिक धरातल पर उभरे वह सभी प्रगतिशील आन्दोलन से सम्बद्ध थे । फलतः उसमें हिन्दी-उपन्यास की भाँति वैविध्य विस्तृता और नवीनता उत्पन्न न हो सकी । प्रगतिशीलता ने उपन्यासों को सीमित करके एक विशेष परिधि में आबद्ध का दिया और यही प्रत्यूद्धता इस युग के उर्दू - उपन्यासकारों की सीमा बन गयी ।

विभाजन की ब्रासदी से उत्पन्न सांस्कृतिक शून्य के कारण स्वतन्त्रता के पश्चात् उर्दू - साहित्य के फलस्वरूप उपन्यास का लगभग अभाव सा ही रहा और जो उपन्यास लिखे भी गये वह भी सामयिक परिस्थितियों का ही प्रतिफल थे । फिर भी अजीज़ अहमद, डा० मुहम्मद अहसन फारूकी , क़ुर्तुल ऐन हेदर और शोकत सिद्दीकी की आदि कल्पित ऐसे उपन्यासकार रहे हैं जिन्होंने उर्दू उपन्यास विधा को पुनः रुज्जीवि किया । क़ुर्तुल ऐन हेदर का उपन्यास आग का दरिया को तो न मात्र इस युग का अपितु सम्पूर्ण उर्दू उपन्यास साहित्यकार का श्रेष्ठतम उपन्यास कहा जा सकता है । इसने चिन्तन कला और शैली शिल्प के नव द्वार खोले और नव युग का साक्षी बना । शोकत सिद्दीकी की

का सुदा की बस्ती' भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसने वर्तमान जीवन के अन्तर्द्वन्द्व और उसके विभिन्न पक्षों का जीवन्त और यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करके उर्दु उपन्यास को एक नये पथ की ओर आसर करने का प्रयत्न किया ।

अन्तः यह कहा जा सकता है कि पूर्व विवेच्य युगीन उर्दु उपन्यास भारत के विषय आर्थिक परिवेश और टूटते बिखरते मूल्यों से उत्पन्न संक्रास, यौन सम्बन्धी कण्ठाओं मनोवैज्ञानिक उलझनों और समस्याओं अपनी परिधि में समेटता निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ता रहा है और कुसल ऐन हेदर और शोकत सिद्दीकी जैसे उपन्यासकारों ने उसे पूर्ण उत्कर्ष की ओर आसर कर दिया है ।

उपर्युक्त विवेक से स्पष्ट है कि जीवन मूल्यों के संक्रमण और विषम परिस्थितियों ने हिन्द और उर्दु उपन्यास को युगानुरूप अनेक मोड़ दिये और उसे विभिन्न धाराओं में विकसित करके भविष्य की संभावनाओं के पथ को प्रशस्त किया । इस प्रकार इस युग के उपन्यास जीवन के संगीत को निरन्तर विभिन्न रूप में प्रस्तुत करके उसकी प्रगति के साक्षी बने ।

तृतीय अध्याय

=====

स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यिक गति और बदलते परिवेश

=====

संस्कृत और विद्वत्त की प्रक्रियाओं के मध्य से गुजरता समाज सांस्कृतिक, वैयक्तिक सामूहिक और संचालित दिशाओं का साक्षी बनता हुआ साहित्य पर गंभीर प्रभाव डालता है। परम्परा और नृत्तता, परिवर्तन और स्वामित्व एवं सत्यता और सांस्कृतिक श्रृंखला की पारस्परिक तकरावट एवं संघर्ष से भिःसृत तत्त्व, नये सोपानों की चरितार्थता और सीमावर्ती के कारण का कर उभरते हैं। परम्परा और परिवेश से उभरा सम्बन्ध और सार्थकता, संसार के प्रजासत्तिक विस्तार के मध्य जीवन की अंगुष्ठियों से गुजर कर, यथार्थ-मूल्यों और स्वतन्त्र दिशाओं के अनुगमन पर निर्भर करती है। सामाजिक व्यवहार की विशिष्ट प्रक्रिया और उसके संश्लेषण अनुभूत्यात्मक प्रभाव ही रचना को सार्थक और सज्जतीय बनाते हैं। "अनुभव हमें प्रत्येक क्षण जादोमित रखते हैं और प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्त हमारी मानसिक प्रक्रिया हमारे भीतर निरन्तर रखे हुए विश्वकृतियों का सम्यक् परिणाम होती है।" यही अनुभव साहित्य को जीवन्त बनाते हैं।

जीवन का जीवन यथार्थ, परिवर्तनीय सामाजिक परिवेश, युगीन परिस्थितियों और संघर्ष, विद्रोह एवं छात्रों की समर्थ चेष्टा, नवीन प्रतिमानों,

संभावनाओं और नूतन सर्जनशील आयामों की शिनाउत करके साहित्य को एक व्यापक क्षितिज प्रदान करती है। "जिस प्रकार बेतार के तार का ग्राहक यन्त्र आकाश मण्डल में विद्यरती हुई विद्युत-तरंगों को पकड़कर उनको भाषित शब्द का आकार देता है, ठीक उसी प्रकार कवि या लेखक अपने समय के वायु-मंडल में घूमते हुए विचारों को पकड़ कर मुखरित कर देता है।"। इस प्रकार युगीन परिवेश, तत्कालीन चिन्तन, कला एवं साहित्य पर प्रत्यक्ष, गम्भीर और स्पष्ट प्रभाव डालता है।

वर्तमान युग में मानवीय अस्तित्व और उसकी सुरक्षा के लिए जैसा भयानक और गहन संकट आ खड़ा हुआ है, उसका अनुभव इसके पूर्व मानव जाति ने कभी नहीं किया था। वह मुख्य और प्रतिमान जिज्ञा पर कल सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था का मूलधार था, आज व्यर्थ होकर अपनी अर्थव्यवस्था छोड़े हैं। परंपराएं चरमरा कर टूट गयी हैं और एक नयी संस्कृति, नये युग और ऐसी नयी पीढ़ी का जन्म हो रहा है जो अपने आचार विचार और चिन्तन के स्तर पर पुरानी पीढ़ी से नितान्त भिन्न है।

आर्थिक वैषम्य, दुराचार, नैतिक पतन और भ्रष्टाचार अपना सिकुका जमाते जा रहे हैं। पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और वैषम्य बढ़ता जा रहा है और स्वार्थ एवं भोक्तृता के भयावह पाश ने समस्त विश्व को अपनी परिधि में आबद्ध कर रखा है। धर्म, सम्प्रदाय और विभिन्न फिरो के केद्वाने में बन्दी मानव संघात, कुष्ठ और बिछराव का शिकार बनता जा रहा है। नेराश्रय, पलायन और स्पन्दन हीनता बढ़ती रही है और दिशाहीन मानव अपने को तुच्छ, विवश असहाय और भीड़ में खोया हुआ सा महसूस करता है। उसकी विवेक क्षमता

1. काव्य के रूप, पृ० 5, गुलाब राय, 1958, आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली

कुल गयी सी प्रतीत होती है। वह एक ऐसे संक्रान्त-युग में रह रहा है जिसमें न तो वह पुराने मूल्यों को स्वीकार कर पा रहा है और नही नए स्वस्थ मूल्यों की रचना में समर्थ हो सका है। उसका आत्म-संदर्भ उसे जोड़े दे रहा है और आत्म पराजय के बोध ने उसकी शेष ऊर्जा को भी समाप्त सा कर दिया है। उसे चतुर्दिग भ्रम, बीमारी, शोक, पनायन, बेराशय, निर्धनता, केमारी नीति एवं मृत्यु के दर्शन होते हैं। "बीसवीं" शताब्दी का उत्तरार्ध एक अजीब अज्ञातोप, अविश्वास, अस्वीकार, वैचारिक संघर्ष साथ ही मानसिक क्षिणता, परम्परा से चली आ रही जीवन पद्धति के झोखलेपन के एहसास का जन्म दाता है।¹

भारतीय इतिहास में सन् 1947 से एक नये युग का प्रारम्भ होता है। जहाँ एक ओर भारत ने इस वर्ष स्वतन्त्रता प्राप्त करके, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और समाजार्थिक शोषण से मुक्ति की उद्घोषणा की, वहीं विभिन्न राजनैतिक परिस्थितियों ने देश के विभाजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करके दूर साम्प्रदायिक विभीषिका, अहरण, क्लृप्ताकार और विभिन्न अमानवीय घटनाओं और समस्याओं को भी जन्म दिया। इसी वर्ष सत्य, प्रेम, अहिंसा और सत्याग्रह के मार्ग द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करके भारत ने विश्वेतिहास में एक नूतन अध्याय की सर्जना की थी परन्तु साथ ही साथ गांधी और गौतम के इस देश ने जिस अमानवीय बर्बरता का पिरक्य दिया था उसका उदाहरण भी अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। यह विरोधाभास अमूर्त है। "हमारा यह युग अत्यन्त मिराबा और विरोधाभास का युग है, इसमें मानव कहता एक है और करता दूसरा है।"²

1. डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय: द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ०, 75-6, राजमाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली प्र० 1973
2. प्री स्ट्रै : लिटरेचर एण्ड वेल्थ में , पृ० 443

यह विरोधाभास विभाजन के पश्चात् उत्पन्न उग्र और भयावह रूप में सम्मुख आता है। विभाजन की अपूर्व ब्रासदी के पश्चात् साम्प्रदायिक विभीषिका, घृणा, वैमनस्य, अत्याचार बलात्कार बूट और नैतिक पतन के जो दृश्य सामने आये वह इन्हे वास्तविक और नैराशपूर्ण रहे हैं कि सम्पूर्ण मानवीय मूल्य व्यर्थ लगने लगते हैं। इन परिस्थितियों ने नए सदिशों और विभागों को जन्म दिया। धार्मिक और नैतिक मान्यताएँ एवं आस्थाएँ डाँबाडोल हो गयीं। मानसिक संक्रास और भावात्मक बिखराव की प्रक्रिया में तीव्रता उत्पन्न हो गयी। साथ ही इन सब मान्यताओं, आस्थाओं के साथ एक एकता के समाप्त होने, एक सामान्य संस्कृति के नष्ट होने, एक सभ्यता के समाप्त हो जाने और एक युग के विनष्ट हो जाने का बोध भी तीव्रतर हुआ। "हमारी संस्कृति में चिन्ता के एक भरपूर फैलाव का निश्चय ही एक तत्परक कारण यह है कि हम एक ऐसे समय में रह रहे हैं जबकि समूची सामाजिक मान्यताएँ अपने पूर्ण परिवर्तन में हैं और एक विश्व मर रहा है और दूसरा नया विश्व अभी जन्म नहीं ले सका है।"¹

स्वातन्त्र्योत्तर युग संक्रमण का युग रहा है। न मात्र भारत अपितु समस्त विश्व इस युग में एक मानसिक तनाव की स्थिति में था। यद्यपि सन् 45 में द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो चुका था परन्तु युद्ध की भयावह विभीषिका और उससे निःसृत विनाश ने युद्ध की अनुभूतियों को और भी तीव्रता प्रदान कर दी थी। व्यक्ति यद्यपि आणविक शक्ति के युग में प्रविष्ट हो चुका था पर उसे अपनी ही ऊर्जा के खो जाने का दुःख भी था। यह विरोधाभास जो युद्ध के पूर्ण भी था, युद्ध के बाद और भी उग्र रूप धारण कर गया। "आज साहित्यकार इस विस्तृत सृष्टि में स्वयं को खोया पाता है। औद्योगिक क्रांति ने मानव को

जहाँ पहुँचा दिया है, उसकी तुलना में वह अपने अस्तित्व को अवास्तविक और विवक्षित अनुभव करता है। शक्ति और विवक्षता, महानता और क्षुद्रता, विजय और पराजय, इन सबको एक साथ अनुभव करना उसके लिए अत्यन्त मर्मस्पर्शक है।¹

जीवन के यही अन्तर्विरोध, अमी बेचारीगी और विवक्षता बोध इस युग के साहित्यकारों में पूर्ण रूप से दृष्टिगत होते हैं। साथ ही साथ नये युग की नवीन कुतूहलों को स्वीकार करने के लिए भी वह सन्नद्ध है। "हम वस्तुतः दो संस्कृतियों की संधि में फँसे हैं - एक मरती हुई इन्द्रियपरक संस्कृति तथा दूसरी आने वाले कल की विचारात्मक संस्कृति जो अभी पकड़ में नहीं आ रही है।"² स्वतन्त्रता के पश्चात् नये समाजार्थिक परिवेश और नूतन सांस्कृतिक और राजनैतिक सोपानों ने भी साहित्य को पूर्ण रूप से प्रभावित किया और अन्तः और बाह्य परिस्थितियों ने साहित्य को भी यथा सभव नई दिशाओं को अनुगामी बना दिया। फलतः स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यिक कृति पर नई संभावनाओं का जन्म और नूतन दिशाओं का विकास संचल हुआ। "यों अब तक भारतीय समाज में परंपरागत मूल्य और मानदंड विद्यमान हैं किन्तु सूखी लकड़ी की तरह जो भस्मसात होने के लिए चिंगारी की प्रतीक्षा में हैं।"³

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत ने इतिहास के नाज़ुक दौर में प्रवेश किया। निर्माण और सर्जन के नये आयामों की ओर अग्रसर होने के पूर्व, विभाजन के फलस्वरूप अमानवीय छटना वह में जाबद विस्थापित शरणार्थियों के आवास और

1. अक्षुजा: कराची, जुलाई 1962 ई०, प्र० पहिल्लाम हुसैन

2. सोरोकिन- ट्रांसिस् आब अरपेज, पृ० 13

3. डा० कुमार विमल: अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 220-21

भोजन की व्यवस्था करना आवश्यक था। इसीलिए स्वतन्त्रता के तुरन्त पश्चात् का समय कूठा, असाद संत्रास और निराशा का रहा है। विभाजन ने जिन समस्याओं को जन्म दिया था उनके समाधान हेतु पर्याप्त धन, जन और समय की आवश्यकता थी। लाखों व्यक्तियों को आश्रय और रोज़गार प्रदान करने के तीव्र प्रयास किये जाने लगे। सभी नागरिकों को समानता के धरातल पर खड़ा करने हेतु उन्हें समान स्वतन्त्रताएँ और मौलिक अधिकार प्रदान किये गये। विभिन्न योजनाएँ बनाकर समाज को उन्नति-पथ की ओर अग्रसर करने का प्रयत्न किया जाने लगा और औद्योगीकरण की नीति को अपनाने के साथ ही साथ बढ़ती मुद्रा-स्फीति पर भी नियन्त्रण रखने के प्रयास किये गये। "स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन का वह समय आया जबकि वह अपनी आत्मा को गहराई और विश्व-कल्याण के सन्दर्भ में पहचान सकता था। अब वह चारों ओर की परिस्थितियों को अधिक स्पष्टता और यथार्थता के साथ देखकर नए क्षेत्रों में पदार्पण कर सकता था। भारतवासी अब अपने जीवन की अरुढ़ गति और घुटन दूर करके नई शक्ति-स्फूर्ति प्राप्त कर सकते थे। वह एक ऐला ऐतिहासिक मोड़ था जहाँ से वह अपने अपरिमित भविष्य को या तो प्रशस्त बना सकता था अथवा अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार सकता था।"

भारतीय संविधान के निर्माताओं का मुख्य लक्ष्य जनसाधारण को उन्नति के समान अग्रसर प्रदान करके, समानता के आधार पर सबके व्यक्तित्व का स्वांगीण विकास करना रहा है। फलस्वरूप सभी नागरिकों को समानता न्याय और स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। "भारतीय संविधान में न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे की घोषणा द्वारा स्वतन्त्र भारत की इस आकांक्षा को

1. डा० लक्ष्मी सागर वाण्यय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 18

साकार रूप प्रदान करने की चेष्टा की गयी है।¹ यही कारण है कि शीघ्र ही एक ऐसी राज्य-व्यवस्था की स्थापना के प्रयास किये जाने लगे जिसमें "न वर्ग वैश्य होगा न वर्ग अस्मानता न जाति-पाति, न ऊँच-नीच, जिस समाज में हर व्यक्ति को न्याय, समानता, विकास करने का समान अवसर, शिक्षा, काम और सुरक्षा पाने का समान अधिकार होगा, जिस समाज के आधार-स्तम्भ हैं - जनवाद आर्थिक समानता, राष्ट्रीय एकता और धार्मिक सहिष्णुता जिसके तीन प्रेरक सूत्र हैं - आजादी की रक्षा, विश्व शांति और प्रगति।"²

इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयास किये गये। परन्तु जहाँ एक ओर राष्ट्र विकास-पथ की ओर उन्मुख हुआ वही दूसरी ओर भ्रष्टाचार, अनीति और दमन की राजनीति ने भी अपना आंक जमाया और स्वार्थों के संघर्ष ने अनेक राष्ट्र-व्यापी समस्याओं को जन्म दिया और एक ऐसी पीढ़ी अस्तित्व में आई जिसका मूँहों पर कोई विश्वास नहीं था। "विकासमान नई नैतिकता का आग्रह है कि धर्म, काम का विरोधी न रहे। काम भावना प्राकृतिक मांग है। धर्म, पाप, पुण्य, नीति, अनीति, पवित्रता आदि से काम-भावना का कोई सम्बन्ध नहीं है।"³

वस्तुतः "भारत की युवा पीढ़ी ही नहीं द्वितीय महायुद्ध के बाद के संसार की युवा पीढ़ी एक वैचारिक बौद्धिक क्रान्ति, उथल-पुथल और विद्रोह के युग से गुज़र रही है। मानव सभ्यता के इतिहास में ऐसा युग शायद पहले कभी नहीं आया था।"⁴

1. डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय: द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 18

2. रामगोपाल चौहान: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ० 201

3. डा० हेमेश्वर कुमार पानेरी: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, मुख्य संकलन, पृ० 123

4. डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय: द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 37

भारत के राजनैतिक ध्वीकरण का कार्य भी कम कठिन नहीं था ।
 आर्थिक दृष्टि से भी यह युग संघर्ष और संक्रमण का युग रहा है । सामन्ती
 व्यवस्था को समाप्त करने के अनेक प्रयास किये गये और जमींदारी प्रथा का भी
 उन्मूलन कर दिया गया परन्तु फिर भी आर्थिक शक्ति पूँजीपति तथा महाजन के
 हाथ में केन्द्रित होती गयी । "एक प्रकार से इस युग को सामन्तवाद से पूँजी-
 वाद में परिवर्तित होने का युग कहा जा सकता है ।"¹

शासन को सैन्य संगठन पर भी पर्याप्त धन-जन लगाना पड़ा ।
 इसी युग में युगीन परिस्थितियों से मध्य वर्ग का जन्म हुआ और स्वतन्त्रता के
 फलस्वरूप जहाँ भारतीय जीवन में एक गति, स्पन्दन, स्फूर्ति और ऊर्जा का
 स्फुरण हुआ, वहीं दूसरी ओर जीवन की जटिलताएँ, क्लेशताएँ, दुरुहताएँ और
 विभिन्न समस्याओं में भी वृद्धि हुई । देश की सामाजिक पुनर्संरचना के हेतु अतों
 और बारियों को भी समानता के अधिकार प्रदान किये गये और देश सम्पूर्ण
 सांस्कृतिक, राजनैतिक और समाजार्थिक परिवेश में आधारभूत परिवर्तनों का साक्षी
 बना । "स्वातन्त्र्योत्तर काल में नई राजनीतिक आर्थिक परिस्थितियों के
 फलस्वरूप सामाजिक परिवेश विशेष उल्लेखनीय परिवर्तनों का लक्ष्य बना है । देश
 के राजनीतिक, आर्थिक नव-निर्माण के साथ सामाजिक जीवन में भी नए मूल्यों,
 आदर्शों का विकास होने लगा ।"²

भारतीय सरकार ने भारतीय जन-जीवन में नवस्पन्दन और आर्थिक
 विकास की गति बनाए रखने हेतु नूतन योजनाओं के निर्माण द्वारा नवीन सोपानों
 की सर्जना की । आज के वैज्ञानिक युग में संसार के साथ चलने हेतु विज्ञान की

1. डा० योगेन्द्र बख्शी: हिन्दी और पंजाबी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन,
 पृ० 39

2. कण्ठी प्रसाद जोशी: हिन्दी उपन्यास: समाज शास्त्रीय अध्ययन , पृ० 46-47

उन्नति के भी सार्थक प्रयास किये गये और युग की आवश्यकता और मांग के अनुरूप ही भारत ने गांधी की विचारधारा पर चलते हुए भी पश्चात्य चिन्तन को आत्मसात् करके उसे भारत की आवश्यकता के अनुरूप मोड़ दे देने का प्रयत्न किया और विदेशों से विभिन्न चिन्तनों के साथ विभिन्न क्षेत्रों की तकनीक का भी आयात करके राष्ट्र को आगे बढ़ाने की दिशा में सरास्वीय कार्य किया ।

आज वैज्ञानिक जीवन दृष्टि ने समस्त संसार को एक इकाई बना दिया है । दूरियाँ सिमट गयी हैं और समस्त विश्व एक दूसरे के विचारों, चिन्तन, कला और साहित्य से प्रभावित होने लगा है । वैज्ञानिक मशीनीकरण के कारण नवीन औद्योगिक समाज का निर्माण हुआ और परम्परागत वर्ग व्यवस्था के स्थान पर नवीन वर्गों का उदय हुआ ।¹ फलस्वरूप परम्परागत आस्थाएँ खण्डित हो गयीं । "विज्ञान ने जिन आस्थाओं और मूल्यों को खण्डित किया है उनसे कहीं अधिक सबल आस्थाओं और मूल्यों को जन्म दिया है ।"² परन्तु इस संक्रमण की स्थिति और नयी प्राप्त वैज्ञानिक शक्ति ने वैश्विक जीवन में जटिलताएँ भी उत्पन्न की हैं । "विज्ञान ने संसार की भौगोलिक सीमाओं को धूमिल कर विविध राष्ट्रों को मानव परिवार के सदस्यों के रूप में उपस्थित कर दिया है और वे अपनी विशिष्ट सीमाओं के संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकल कर जीवन के समान उद्देश्यों को प्राप्त करने में अक्षर हो गये तथापि इन उद्देश्यों की प्राप्ति ने संघर्ष के अक्षर भी उपस्थित कर दिये हैं ।"³

शिक्षा देश की उन्नति का मूलाधार होती है इसीलिए स्वातन्त्र्य-योत्तर भारत में शिक्षा के निरन्तर विकास के प्रयास भी किये गये और उनमें

-
1. डा० हेमद्र कुमार पानेरी: स्वातन्त्र्ययोत्तर हिन्दी उपन्यास: मुख्य संक्रमण, पृ० 128
 2. डा० ओंकार नाथ श्रीवास्तव: हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष, पृ० 12
 3. डा० राम कुमार वर्मा: साहित्य शास्त्र, पृ० 57

आजातीय सफलता भी प्राप्त हुई। शिक्षा के द्वारा शोषित वर्ग में भी नृत्न वेत्ता जागृत हुई। कोडबिल के द्वारा हिन्दू नारियों को भी जलक का अधिकार प्रदान किया गया जिससे उनमें सुरक्षा की भावना का विकास हुआ। शासन ने स्त्रियों, कम आयु के बच्चों, श्रमिकों और हरिजनों के हेतु विरोध प्राविधानों की व्यवस्था की। वर्गीय विषमता को दूर करने के अथक प्रयास किये जाने लगे। "इस प्रकार 1960 तक के भारत का परिवेष्ट इस महान संग्राम में जुझने, सफलता पाने तथा स्वा-तन्त्र्य को सहेजने के विराट प्रयास की कथा है।"¹ आज का कृष्ण वर्ग भी एक संक्रान्त स्थिति से गुजर कर स्वस्थ दिशा की ओर उन्मुख होने लगा है। उसने मानवीय भावनाओं और उसकी ऊर्जा से अन्तरंग होकर उसे विभिन्न पिरकों के केदराने से मुक्त करने का उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया है परन्तु अभी उसे पूर्ण रचनात्मकता की ओर पद बढ़ाना शेष है। "आज का नव युवक इजिहास को सबसे बड़ा मूर्ति भङ्ग है। मूलतः वह आदर्शवादी है और जीवन में आदर्श परिस्थितियों के आवेग में वह तिलमिला उठता है।"²

भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जिन् नये उपादानों के माध्यम से आगे बढ़ने का प्रयास किया उनसे निःसन्देह वह फल प्राप्त नहीं हो पाये जो होना चाहिये थे और शायद इसका सबसे बड़ा कारण मानव-सृष्टियों और साथ ही देश भक्ति की भावना का द्रास है। हमारा राष्ट्रीय चरित्र अभी तक कोई स्वल्प ग्रहण नहीं कर सका है फलस्वरूप हमारी अधिकांश योजनाएँ मात्र कागजी घोड़े त्त पर रह गयी हैं। "मानव ने अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं एवं ज्वर परम्पराओं का तो भङ्ग किया पर स्वयं स्वार्थ के छोटे-छोटे दायरों में बंद हो

1. डा० योगेन्द्र बख्शी, हिन्दी और पंजाबी उपन्यासों का कृष्णात्मक अध्ययन, १०२

2. डा० लक्ष्मी सागर वार्ण्यः द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास

गया । दायरों में संकुलित मानव भीड़, वात और अस्तित्व संकट की चर्चा से आनन्दित हुआ । मनुष्य को अपने ही परिवर्तन की जलती लालच के झिंकट छड़ा होकर सार्विकाल दी जाने वाली काकटेल पार्टी का मीनू ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं लगा ।¹ आज स्वार्थपरता, पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता, असहवाद और भाई भतीजेवाद ने एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया है जो हमको ऊँदर से खोखला करती जा रही है । आवश्यकता इस बात की है कि इन सीमित दायरों को तोड़कर और 'स्व' को 'पर' से जोड़ कर विशाल परिप्रेक्ष्य में देखा जाये और एक ऐसे राष्ट्रीय, वरिष्ठ का निर्माण किया जाये जो सम्पूर्ण राष्ट्र को एक स्वस्थ दिशा या अग्रगामी बना सके । "समाज को बदलने के लिये मनुष्य को बदलना आवश्यक है । उनके विचारों, मूल्यों, आदर्शों को हृदय-परिवर्तन द्वारा बदला जा सकता है न कि अत्याचार और दमन द्वारा ।"²

यह देख का दुर्भाग्य रहा है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् यहाँ का नागरिक देश के लिये समर्पित नहीं हो सका है । जाये किन छड़ताल, मानिक और मजदूर का संघर्ष और बेरोजगारी आदि दृष्टिगत होते रहते हैं और एक सामान्य व्यक्ति आज भी वहीं खड़ा है जहाँ वह आज़ादी के पूर्व खड़ा था । बढ़ती हुई जनसंख्या ने भी प्रशासन के सम्मुख एक गम्भीर चुनौती उपस्थित कर दी है । शहरों के निरन्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ ही साथ ग्रामों के नगरीकरण की प्रक्रिया भी जारी है । स्वच्छ वायु, मैडल का स्थान दुषित पर्यावरण लेता जा रहा है । लोक आधुनिक और भौतिक सुख-सुविधाओं के आवाहों ने मानवश्रम में लोक ग्रन्थियों उत्पन्न करके उसे संघात, कठिनाई, और रस से वस्तु कर दिया है । वह एक

1. डा० हेमचन्द्र कुमार पानेरी: स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास: मुख्य संकलन, पृ० 129

2. डा० लक्ष्मी तामर वार्ष्णेय: द्वितीय महायुद्धोत्तर: हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रकार के अनिश्चय, सन्देह, विम और एकान्तिकता के मध्य से गुजर रहा है।
"सदियों के संघर्ष, मूल्यों के इस द्रास और पल-पल परिवर्तन की स्थिति में प्रत्येक
व्यक्ति स्वयं को दिग्भ्रमित अनुभव करता है।"¹

आज का मानव इस विस्तृत समाज में स्वयं को खोया हुआ महसूस
करता है। यही कारण है कि असन्तोष, अस्वीकार और विद्रोह - भावना अपनी
जड़ें मजबूती से जमाती जा रही है। यह स्थिति ही एक दिग्भ्रमित पीढ़ी के
निर्माण की उत्तरदायी है। "देश में बढ़ती हुई हिंसा, चारित्रिक एवं नैतिक
दुर्गता का अभाव, अनुशासन हीनता, घुसखोरी, भ्रष्टाचार, चोरबाजारी साम्प्रदा-
यिकता, भाषावाद, जातिवाद, प्राप्तीयता, भाई भतीजावाद, आर्थिक असन्तुलन,
अन्न का अभाव, बेरोजगारी बेकारी मंहगाई आदि ने पुराने नेताओं, पुराने
विश्वासों, आस्थाओं और आदर्शों, पुराने जीवन मूल्यों, पुरानी समाज व्यवस्था
जीर्ण-शीर्ण धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति, स्तूप में हर प्रकार
की अथोरिटी, अंश के प्रति आस्था की जड़ें हिला दी है।"²

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय बुद्धिजीवी के स्वप्न विखंडित हुए
हैं। सामाजिक परिवर्तन, विनष्ट और परिस्थितियों ने लेखकों की सर्जनात्मकता
को भी यथेष्ट सीमा तक प्रमाणित किया। पश्चात्य प्रभाव, नगरीकरण, यान्त्रिकता
और औद्योगीकरण ने भारत में भी आमूल-मूल परिवर्तन किये। भारतीय ग्राम,
संस्कृति के समापन की प्रक्रिया के साथ ही साथ महीनी संस्कृति का अन्त्य हुआ।
"भारत के बुद्धिजीवी वर्ग ने सम्मुख आज मूल प्रश्न जीवन के अस्तित्व बोध और

1. डा० हेमचन्द्र पानेरी: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास: मूल्य संग्रह, पृ० 134

2. डा० लक्ष्मी सागर वर्ण्य : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का
इतिहास, पृ० 51

सार्थकता का है, व्यक्ति की सत्ता और गरिमा को फिर से स्थापित करने का है। यह प्रश्न सभी देशों में है।^{1*}

नए युग की नई विवेकशक्तियों से प्रभावित होकर लेखकों ने व्यक्ति और समाज के परिवर्तित होते हुए संश्लिष्ट रिश्तों को दृष्टि में रखकर विभिन्न समस्याओं को विभिन्न सन्दर्भों में देखने का प्रयत्न किया। इस युग का परिवेष्ट एक प्रकार से मोह भंग का था जिसमें आस्थाएँ और विश्वास टूट रहे थे और मानव जीवन की समस्याएँ गहराती जा रही थी। "पिछले 25 वर्षों के विविधित या भविकसित 9 मानव मूल्यों और नैतिक मान्यताओं के प्लस्त्वस्व साहित्य को एक सर्वथा नया आयाम और एक नुक्त दिशा प्राप्त हुई है। सम्प्लिष्टता के ज्ञा और व्यक्तिगत ज्ञा दोनों ने साथ ही दोनों के स्वरूप में सामाजिक स्थिति के प्रतिमानों को व्यष्ट सीमांक प्रभावित किया है।^{2*} परिणाम स्वरूप मानव मूल्यों में यह आमूल परिवर्तन हुए जिन्होंने स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य पर गम्भीर प्रभाव डाला।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले परिवर्तनों, मूल्यों के बदलाव संसार, कला, धर्म, आत्मसंरायेपन और एकाकीपन के विन्तन के प्लस्त्वस्व स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यिक क्षितिज नई दिशाओं का अनुगामी बना। "आज के भारतवासी के जीवन के चारों ओर जो अव्यक्तपूर्ण परिस्थितियाँ हैं, उनके बीच आज के लेखक का स्वना-संसार, उसका विन्तन और बोध उसकी सर्जनात्मकता आदि सभी कुछ नेजी के साथ परिवर्तित हो गया है और हो रहा है। वह जीता है, किन्तु यह महसूस करे हुए जीता है कि वह एक छदम जोड़े हुए है।^{3*} जीवन

1. डा० लक्ष्मी सागर वाष्णायः द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 65

2.

3. लक्ष्मी सागर वाष्णायः द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 55

के इन अन्तर्विरोधों और असंगतियों ने भारतीय परिवेश को परिवर्तित करने के साथ ही साथ बुद्धिजीवी और लेखक वर्ग को यथेष्ट सीमा तक प्रभावित किया ।

* साहित्य का लक्ष्य मानव की आन्तरिक ऊर्जा का विकास करके उसके व्यक्तित्व को नया निखार , तराश और पेनापन प्रदान करना होता है । यद्यपि "भारतवर्ष में तो स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद सारी आस्थाएं, मूल्य मर्यादाएं हून्यता के प्रवाह में विलीन हो गयीं । मोह में डूबा हुआ व्यक्ति भीतर से टूटने लगा और छिड़ित आशाओं की पीड़ा से वह अर्जित हो उठा ।"¹ परन्तु साहित्य और साहित्यकार मानवीय अस्तित्व पर छाये इस गहन संकट को उपेक्षा और तटस्थ भाव से नहीं देख सकता था । क्योंकि मानव वह अन्तिम अविभाज्य इकाई है जिससे साहित्य और साहित्यकार की उत्पत्ति ही उन्हें नव आयाम प्रदान करती है ।

स्वातन्त्र्योत्तर युग जबरदस्त सांस्कृतिक संघर्ष और ठकराहट का युग है । आस्था अस्वीकार और अस्तित्व पर लगे प्रश्न जिन्होंने ने इस सांस्कृतिक ठकराहट को और भी तीव्रता प्रदान कर दी है । फलतः "अने चारों ओर के इस वातावरण से विक्षुब्ध होकर साहित्यकार के हृदय में तीव्र प्रतिक्रिया हुई है। मानव-मूल्य, नैतिकता, अर्थिकता, वैज्ञानिक और टेक्नोलोजिकल प्रगति के बीच भूख, नवीन परिस्थितियों में यौन सम्बन्ध आदि प्रश्नों के विविध पक्षों के वह समाधान ढूँढ़ना चाहता है ।"² इस परिस्थिति ने लेखकों के अनेक वर्गों को जन्म दिया । एक तो वह जिन्होंने युग की भयावहता को सम्मुख आत्म समर्पण कर दिया दूसरे वह जो अभी भी मानव मूल्यों में आस्था रखते हैं यद्यपि उन पर नयी

1. डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 80

2. वही , पृ० 77

परिस्थितियों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है और तीसरे वह जिन्होंने जीवन का निकट से सँछन करते यह निष्कर्ष निकाला है कि जीवन में विघटन और संघटन की प्रवृत्तियाँ एक साथ मौजूद हैं परन्तु विघटनकारी प्रवृत्तियाँ सामयिक हैं ।

स्वातन्त्र्योत्तर युग की संस्कृति ने एक प्रकार से विश्व संस्कृति का रूप धारण कर लिया है क्योंकि आज किसी भी एक स्थान पर होने वाली एक घटना से समस्त विश्व प्रभावित होता है । एक देश की चिन्तन-धारा और साहित्यिक परम्परा दूसरे देश के चिन्तन और साहित्य पर गम्भीर प्रभाव डालती है । इसीलिए विभिन्न विशिष्ट जीवन दर्शनों की अभिव्यक्ति समस्त वैश्विक साहित्य में प्राप्त होती है ।

भारतीय साहित्य ने भी युगीन परिस्थितियों - परिवेश और विभिन्न वैश्विक चिन्तन धाराओं ने पर्याप्त रूप से प्रभावित किया और आधुनिक जीवन की विविधताओं वैषम्य और मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं, महायुद्धों और विभाजन की वास्तवी से निःसृत विभीषिका ने भी भारतीय साहित्यकार को नवीन दिशाओं का अनुगामी बना दिया ।

स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य पर भारतीय चिन्तकों के ब्रह्म समाज, आर्य समाजी, मानवधर्मी और अन्ताराष्ट्रीय दृष्टिकोण का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है । आधुनिक साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव गांधी जी की विचारधारा का उठता हुआ । वस्तुतः उनकी विचारधारा में भारतीय संस्कृति और जीवन दर्शन मूल रूप से लब्ध है । उन्होंने किसी नये जीवन दर्शन की रचना नहीं की अपितु वह जो "भारत की उस आचारपरक आध्यात्मिक जीवन दृष्टि तथा सांस्कृतिक परम्परा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्धित एवं संशोधित संस्करण है, जो कर्तव्यविषयों से सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, अस्वार्थ, अरिग्रह, आत्मसंयम, आदि नैतिक मूल्यों को भौतिक जीवनमानों की ओर अति अधिक काम्य और

लक्ष्य मानती' जाहें है ।¹ समस्त भारतीय विचारधारार्थ मानवतावादी भावनाओं से जापूरित है और उनका ध्येय सर्वजन सुखाय' और 'सर्व जन हिताय' की मानवतावादी भावना रही है । समस्त भारतीय दर्शन "'सर्वोदय' की मानवतावादी भावना से लैवालि है जिसका अर्थ है सच्चा विकास' । सत्य और अहिंसा सर्वोच्च समाज के बुनियादी सिद्धान्त हैं । इसमें सभी व्यक्तियों के अधिकतम हित की भावना निहित है ।²

भारतीय साहित्य पर पार्श्वगत्य जीवन दृष्टियों का भी, भरपूर गम्भीर एवं दूरगामी प्रभाव पड़ा । स्वतन्त्रता प्राप्ति करने से पूर्व भारतीय साहित्य में जिस पार्श्वगत्य दृष्टियों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया था, स्वातन्त्र्योत्तर कालीन परिवेश में वे और गीढ़ होकर उभरी । इस युग के साहित्य में विभिन्न पार्श्वगत्य चिन्तन धाराओं का समन्वय प्राप्त होता है । स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य पर मार्क्स, फ्रायड, युंग, रूसो, यास्पर्स, हेडमेर, नीत्शे और सार्त्र आदि का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है ।

मार्क्सवादी चिन्तन पर आधुनिक जीवन दृष्टि साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से अभिहित हुई । मार्क्स तैत्तार का एक मात्र सत्य भौतिक जीवन को ही मानता है । उसकी धारणा है कि तैत्तार के समस्त क्रिया-कलाप आर्थिक एवं भौतिक उत्पादनों से नियंत्रित होते हैं । मनुष्य की चेतना उनके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती प्रत्युत उनका सामाजिक अस्तित्व ही उनकी चेतना का निर्धारण करता है । उसके अनुसार प्रत्येक व्यवस्था और वस्तु में, परस्पर विरोधी तत्वों में द्वन्द्व होता रहता है और इसी द्वन्द्व की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एक दूसरी उच्च अवस्था

1. गदगी और गदगीवाद: डा० बी पद्ममिस्री का रमेण , प्र०भाग , पृ० 29

2. डा० सुमित्रा त्वाी: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन , पृ० 95-86

उत्पन्न हो जाती है। हमारे समाज का मूलधार आर्थिक गतिविधियों पर है। पूँजीपति और सर्वहारा दोनों वर्गों के पारस्परिक स्पर्ध के परिणामस्वरूप समाज में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इस विचारधारा से प्रभावित होकर साहित्यकारों ने अर्थ को केन्द्र बिन्दु मानकर नये मानवीय सन्दर्भों की खोज का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया और एक ऐसे मानवीय समाज की परिकल्पना की जहाँ न वर्ग-वैषम्य होगा और न शोषण अपितु अर्थ के धरातल पर सभी समान होंगे। इस विचारधारा का लक्ष्य एक सुखी मानव-समाज की संरचना है और साहित्यकार मानव और उनके आर्थिक विकास को ही अपना मूल बिन्दु मान कर करते हैं। "स्त्री में, भौतिकता, द्रव्हात्मकता, विरोधी तत्वों का स्पर्ध, वर्ग विहीन समाज की कल्पना, गति, परिवर्तन, विकास, प्रगति, आर्थिक व सामाजिक साम्य, सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति प्राचीन के विरोध में नवीन का उदय, समाजवाद की स्थापना, पूँजी को सार्वजनिक अधिकार की वस्तु बनाना तथा निर्धनता से मानवता को छुड़कारा दिलाना मार्क्सवादी जीवन-दर्शन का प्रमुख आधार साम्य है।"¹ इस विचारधारा ने स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यिक क्षितिज पर व्यापक प्रभाव डाला।

शायद, एकर और युग की प्रतिस्थापनाओं का भी भारतीय साहित्यकारों ने पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया और मनोविश्लेषण की यह प्रवृत्ति जो स्वातन्त्र्यपूर्व जीवन रूप में प्रचलित थी, स्वातन्त्र्योत्तर काल में मूर्तर रूप ग्रहण कर गयी। स्वातन्त्र्योत्तर युग विस्मृति-युग का युग है। इसने मानव जीवन की विस्मृति-गतिओं और वैषम्य को बढ़ाकर उसे एक प्रकार के ऊर्ध्व में जाबकर दिया है। रणवीर राणा के शब्दों में इस युग में "मनुष्य की जात्या अने परिवेष्ट समाज वर्ग तथा परिवार से हटकर अने में ही केन्द्रित होती गयी। उसकी बहिर्मुखता घटने

1. डा० सुमित्रा त्वागी: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-साहित्य में जीवन दर्शन, पृ० 92

लगी और यह अन्तर्मुख होता गया। उसी जीवन में व्याप्त बाह्य संघर्ष का स्थान मानसिक संघर्ष ले ले लिया।¹ विभिन्न प्रकार की ग्रन्थियों ने उसी जीवन में कृष्ण और ध्रुव की भावना उत्पन्न की।

फ्रायड ने व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके सम्पूर्ण अन्तर्गत का विश्लेषण और विभाजन वेतन, अव्यक्त और अचेतन के आधार पर किया। उसका विचार था कि दमित काम-वृत्तियों आजीवन मानव के व्यवहार को प्रभावित करती रहती है। स्वतन्त्रता से पहले और स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यकारों पर इसका गम्भीर प्रभाव पड़ा और जीवन विषयक उनकी धारणाएँ परिवर्तित होने लगीं। 'फ्रायड के सिद्धान्तों ने व्यक्ति-मानस और व्यक्ति-चेतना का जो रूप उद्घाटित किया था उससे साहित्यकार को बड़ी सहायता मिली।'² और उसने मनोविज्ञान के जालोक में नये सोपानों और आयामों की सर्जना प्रारम्भ कर दी।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में जिस सामाजिक परिवेश का निर्माण हुआ उसमें संयुक्त परिवारों का विघटन प्रारम्भ हुआ। परिणाम स्वरूप 'लोगों में एक वैयक्तिक स्थिति की कामना होने लगी और उनमें व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उभरने लगा। व्यक्ति की स्वतन्त्रता की भावना बलवाली होने लगी जिसके परिणाम स्वरूप घृणा ईर्ष्या और किट्टेब, सहानुभूति हीनता तथा ऊँचाव से जीवन भरा-बटा जाने लगा।'³ इस स्थिति ने व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति को और मुखरित किया। वस्तुतः व्यक्तिवाद मानव के व्यक्तिगत विकास का जोरक बन कर एक आधुनिक जीवन दर्शन के रूप में प्रतिस्थापित हुआ। पारवात्य परिवेश में पल्लवित

1. डा० रणवीर राणा: हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास, पृ० 236

2. वही

3. डा० सुरेश सिन्हा: हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ० 342

होकर यह दर्शन आज भारतीय जीवन का आधार भी बना जा रहा है। यह बाद व्यक्ति को निरंकुशता से प्रदान करता है परन्तु सामाजिक कल्याण के लिए दायित्व बोध की निरन्तरता पर भी बल देता है। "व्यक्तिवाद यह स्वीकार करता है कि मानव का वास्तविक उद्देश्य, वह उद्देश्य जो उसके लिए स्थिर करता है, अपनी समस्त क्रियाओं का पूर्ण एवं सामंजस्य पूर्ण विकास है।"¹

आधुनिक जीवन की जटिलताओं ने व्यक्ति को निजी अस्तित्व की सुरक्षा और अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। साहित्यकारों ने इस विचार द्वारा जो ग्रहण किये अपनी दमित इच्छाओं और कूठाओं से निवृत्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए साहित्य को भी व्यक्तिवाद की ओर मोड़ दिया। "व्यक्तिवाद ने व्यक्ति के अह पर आधारित करने वाले समाज के विभिन्न नियमों और बर्तनकों को अलगारी माना है और इसी अहंता में 'व्यक्ति' के 'व्यक्ति' विकास की सम्भावनाएँ देखी हैं - व्यक्तिवादी विचार में सामाजिक नियम व्यवस्था अपना नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। उसमें व्यक्ति की अहंता एवं निरंकुश सत्ता की दुहाई दी गयी है।"² स्वतन्त्र्योत्तर साहित्य क्षितिज पर यह प्रवृत्ति अत्यन्त तीव्रता और उग्रता से विस्तार प्राप्त कर रही है।

स्वतन्त्र्योत्तर साहित्य पर पार्श्वगत विचार-धाराओं में से सर्वाधिक प्रभाव अस्तित्ववादी विचार धारा का पड़ा। अस्तित्ववाद के अनुसार व्यक्ति का व्यक्तित्व वास्तविक इच्छाओं से प्राप्त है। जीवन की असुविधों उनकी अपने पास में आबद्ध कर लेती है। वह विभिन्न नियमों द्वारा जड़ दिया जाता है। "अस्तित्ववादी मान्यता है कि मानवता पर आये इस असन्तुष्टि के कारण

1. डा. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास , पृ० 93

2. डा० सुखदेव बुक्स : हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता, पृ० 207-8

अनिवार्य हो गया है कि मानव को पुनः उसके प्राकृतिक आन्तरिक स्वरूप में ऊर्ध्वमुखी चेतना का आधार प्रदान किया जाये और उसके अस्तित्व को आन्तरिक गरिमा का सञ्च और बौद्धिक सम्पन्न दिया जाये जिससे वह सम्पूर्ण मानव बन सके।¹

अस्तित्ववाद एक आधुनिक जीवन-दर्शन है जिसकी मूल प्रस्थापना यह है कि मानव असाध्य और विवश होता है। उस पर अनेक शक्तियों का दबाव होता है। अनेक विवशताएँ उसके सम्मुख होती हैं उसकी सबसे बड़ी विवशता है मृत्यु और मृत्यु - भय से आक्रान्त मानव अपना पूर्ण विकास नहीं कर पाता। अतः मृत्यु को यथार्थ न मानकर मिथ्या समझना वांछित। ईश्वर की भी कोई वास्तविकता नहीं है। "अस्तित्ववादी विचारधारा मानव-जीवन को मूलतः निरर्थक मानती है, तर्क को अस्म समझकर त्याग देती है तथा परम्परागत ईश्वर में आस्था को उत्खीकार करती है। अस्तित्ववाद वस्तुतः धर्म-निरपेक्ष स्तर पर मानव जीवन के लिये विनियत है। वह जीवन को निर्याप, जातक तथा निरर्थक समझकर उसे एक मानवीय अर्थ तथा मूल्य देने की चेष्टा करता है। इसीलिए अस्तित्ववादी दृष्टि में प्रत्येक क्षण का अङ्गुलीय महत्व है। किसी भी अति यथार्थ का अस्तित्व इस व्यवस्था में स्वीकार्य नहीं। अपनी सम्पूर्ण अवज्ञता में मनुष्य ही अस्तित्ववादी चिन्ता का केन्द्र बिन्दु है और इस अवज्ञता को नष्ट करने के लिए मानवीय स्वातन्त्र्य का प्रयत्न समर्थक है।²

इस चिन्तन धारा का प्रारम्भ डीकेगार्ड के चिन्तन से होता है। फ्रेडरिक नीत्शे ने इस चिन्तन को नूतन ऊर्जा प्रदान की। डा० शिव प्रसाद सिंह

1. डा० श्याम सुन्दर दास: अस्तित्ववाद और द्वितीय समरीतार हिन्दी साहित्य, पृ० 15

2. हिन्दी साहित्य ज्ञान भाग 1, पृ० 95 स० स० 2015

के अनुसार - कीर्केगार्ड नीलो और दोस्तोवरली ने - सत्य की वैयक्तिक अनुभव भी वस्तु माना और उन्होंने अस्तित्व के ऊपर आरोपित सभी आवरणों को, चाहे वे धर्म, समाज, राज्य दर्शन अथवा नैतिकता के ही उत्पन्न क्यों न हों, विदीर्ष करने का प्रयत्न किया। व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली और जीवन को एक नयी दृष्टि।¹

बीसवीं शताब्दी में, कार्ल्यास्पर्स ग्रेडियस मार्कल, डा० मार्टिन हेडगर, ज्यापान सार्त्र और अल्बेयर कामू अप्रत्यक्ष अस्तित्ववादी विचारक रहे हैं। "सार्त्र और उनके सहयोगियों ने इस दार्शनिक विचारधारा में यूदोपरान्त नेतारण, धार्मिक आधार हीनता, बुद्धिवाद की अजीर्ण यान्त्रिक सभ्यता एवं ब्राह्मोन्मुख संस्कृति तथा जीवन के निष्क्रिय विकलांग रूप की प्रतिक्रिया विशेष है।² यह विचारक स्वतन्त्रता को महत्व प्रदान करके नियति को जीवन के रूप में स्वीकार करते हैं और जीवन को उसी सम्प्रज्ञा में पालना चाहते हैं। डा० सुरेश सिन्हा के शब्दों में "अस्तित्ववाद जीवन की सम्पूर्णता के माध्यम से परिवेश को जानने का एक सचेत प्रयत्न है।³ इस विचारधारा ने स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यिक क्षितिज को पुनः आयाम प्रदान करके उसका स्वस्व भी बहुत कुछ निर्धारित कर दिया।

यथार्थवाद ने भी आधुनिक साहित्य और चिन्तन पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। "यथार्थवाद अपने निश्चित सैदान्तिक रूप में कला और साहित्य के क्षेत्र में 19वीं शताब्दी में प्रकट हुआ। सन् 1885 में 'कार्वे' ने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया। उन में यथा तथ्य निरूपित केली व्यवहृत हुई और उसके

1. डा० किशु प्रसाद सिंह: आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृ० 69

2. डा० जगज्जित सिन्हा: आधुनिक साहित्य की व्यक्तित्वादी भूमिका, पृ० 90-91

3. डा० सुरेश सिन्हा: हिन्दी उपन्यास, पृ० 87

सम्बन्ध में 'रियलिज्म' शब्द का प्रयोग उसके निर्माता ने स्वयं किया। इसके कुछ समय के पश्चात् सन् 1896 में फ्रांक्फर्ट का प्रसिद्ध उपन्यास 'मैडम क्वारी' प्रकाशित हुआ। यह निधि भी यथार्थवादी आन्दोलन के आविर्भाव का सूचक देती है।¹ यथार्थवादी साहित्यकार जीवन की विविधताओं, जटिलताओं और दुरुहताओं का उसकी सम्पत्ति में चित्रण करता है और यह चित्रण कल्पना पर आधारित न होकर समाज के वास्तविक जीवन पर आवृत्त होता है। "सच्चा यथार्थवाद मानव एवं समाज को एक छद्म के रूप में देखता है। वह उसके एक या कुछ कोनों को ही सामने नहीं लाता यथार्थवाद की अपनी तीन सीमाएँ हैं, सम्पूर्णता स्वतन्त्र जीवन का चित्रण और मनुष्य के सामाजिक सम्बन्ध।"² "सच्चे यथार्थवादी साहित्य की यह प्रमुख विशेषता है कि लेखक बिना किसी भय अथवा पक्षपात के ईमानदारी के साथ जो कुछ भी अपने आस-पास देखता है उसका चित्रण करे।"³

वस्तुतः यथार्थवाद ने साहित्य को उन साधारण से, उनकी समस्याओं और सम्पूर्ण जीवन से सम्बद्ध कर दिया। वह वस्तुओं के यथार्थ चित्रण पर नहीं अपितु सत्यानुभूति से प्रेरित चित्रण पर बल देता है।⁴ उसका प्रमुख लक्ष्य सम्पूर्ण समाज को व्यक्तिगत और समाष्टित रूप में सम्पूर्णता के साथ चित्रण करना होता है उसका उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास है। एकानिता को वह स्वीकार नहीं करता और मानव के व्यक्तित्व का चरमोत्थी विकास चाहता है। पलायनवाद भावुकता दून और विवराव के चित्रण को नकार कर समाजों एक

1. डा० राम अग्र दत्तः साहित्य सिद्धान्त, पृ० 119-16

2. डा० विष्णुसिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० 82

3. जार्ज क्रावः यूरोपियन रियलिज्म, पृ० 137-38

4. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास, पृ० 71

स्वस्थ दिशा देता है। "यथार्थवाद मात्र केमराई चित्र प्रस्तुत नहीं करता। वह चित्र में कल्पना का कलात्मक समावेश करके उसे सजीव और सुन्दर बनाना जानता है। वह केवल बाह्य जगत् की अभिव्यक्ति नहीं करता अन्तर्जगत् के महती उद्देश्यों से प्रेरणा भी ग्रहण करता है। वह नैराश्य को जन्म नहीं देता अपितु विकासशील मौलिक सर्जात्मक दिशा की ओर अग्रसर करता है। वह चारों ओर फैली हुई बुराइयों के आँकड़े प्रस्तुत नहीं करता, अपितु अन्तोष्णद स्थितियों से जूझने का साहस प्रदान करता है।"¹

जिन सन्दर्भों में सामाजिक परिवेश ने पाश्चात्य जगत् में यथार्थवाद का अयुध्य किया था, उन्हीं परिस्थितियों और परिवेश ने भारतीय बुद्धिजीवियों को भी यथार्थवाद की ओर उन्मुख कर दिया और "डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त ने देश के जीवन में उभरती हुई यथार्थवादी चेतना को ठोस वैज्ञानिक संदर्भ प्रदान किया।"² फलस्वरूप स्वातन्त्र्योत्तर केरक इस ओर प्रवृत्त हुए।

सत्यं क्तिव और सुन्दरम् की भावना से जोत-घेत अधिलिखता ने भी स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला। अधिलिखता स्वातन्त्र्योत्तर-साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस साहित्य में जीवन-जीवन सजीव रूप में अपने समस्त नैसर्गिक सौन्दर्य और कल्पना के साथ उजागर हो जाता है। इसमें अनुभव की सन्नता और यथार्थ को प्रामाणिकता, सामाजिकता का संस्पर्श करके लोक जीवन की साक्षी बन जाती है। इस प्रवृत्ति ने भी स्वातन्त्र्योत्तर साहित्यक क्षितिज को नयीस्वरूप दिशाओं से परिचित कराया।

1. डा० क्लेस ज़ेदीः प्रेम्माथ की उपन्यास यात्रा: नव मूल्यांकन, पृ० 496

2. डा० क्लि कुमार सिंह : यथार्थवाद, पृ० 162

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्वातन्त्र्योत्तर युग सन्देह विमल और अनिश्चय का युग रहा है। इस युग में जहाँ एक ओर पुरानी मान्यताएँ, जात्याएँ विश्वास और नैतिक मानदंड क्षिप्त रहे थे दूसरी ओर एक नये परिवेश का निर्माण और नूतन मूल्यों का विकास भी हो रहा था।

द्वितीय महायुद्ध ने भी स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य को नवीन दिशाओं का अग्रगामी बना दिया क्यों कि "द्वितीय विश्व युद्ध तथा उसके परिणामों से उत्पन्न विश्व की परिस्थितियों ने भारतीय जनता के हृदय पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभाव डाला था। राजनीतिक आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों ने जनमानस को सन्नोर दिया और परम्परागत आदर्शों, मान्यताओं, जीवन मूल्यों व जात्याओं का विखंडन हुआ।¹ और नवीन मूल्यों का विकास प्रारम्भ हुआ।

साहित्य अपने युग के भीतरी चेहरों और उन कारकों को जो नये परिवेश का निर्माण करते हैं, उद्घाटित करता है। वह पलायन की ओर हंगित नहीं करता उसका लक्ष्य तो युगीन मानस के सम्पूर्ण विकास से अन्तरंगता स्थापित करना होता है। "स्वाधीनता के बाद व्यक्ति और राष्ट्र जीवन की जो परिस्थितियों हैं, विचारों का संघर्ष और उनमें हैं जीवन मूल्यों के अमूल्य और पुनर्मूल्य की समस्या है और जिस प्रकार इस संकूल, जटिल स्थिति के बीच से व्यक्ति सारे राष्ट्र प्रगति की नई दिशा खोज रहा है, उसी प्रकार देश की नवीन परिस्थितियों और संघर्षों के सन्दर्भ में साहित्य और साहित्यकार के सामने भी नये प्रश्न हैं, नई समस्याएँ हैं, साहित्यकार के दायित्व, साहित्यिक धारणाओं, प्रवृत्तियों एवं विचारों का संघर्ष है इस संघर्ष में ही स्वाधीन भारत का साहित्य अपनीजन्म नई दिशा खोज रहा है।²

1. कलामणि त्रिपाठी: आधुनिक हिन्दी साहित्य प्रवृत्तियाँ, पृ० 98

2. डा० रामगोपाल सिंह बोहान: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ० 29

जोर ली गई दिशा को छोड़ने के ब्यवहार कार्य में विभिन्न अन्तः जोर बाह्य चिन्तन धाराओं ने उसको अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है ।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान संक्रमण कालीन समाज ने साहित्यकार के सम्मुख जो एक गम्भीर चुनौतियों उपस्थित कर दी हैं और वह धर्म और पलायन के मध्य निरन्तर संघर्ष के द्वारा सर्जनात्मक मार्ग का निर्माण करने में संलग्न हैं । 'मानव-मूल्यों की अस्मानना, एवं आदर्श एवं नैतिकता के स्वांग के बीच रहते हुए समकालीन साहित्यकार के एक हाथ में इस समय निर्माण है दूसरे में संहार । कुछ परस्पर विरोधी बातें होी हूँ भी उसकी जाकाली है मानवता को जीवित रखने की, ताकि वह अपने को सामान्य जन को प्रिकाल तक जीवित रख सके ।'¹ जोर अपने के सहारा अस्तित्व को जीवित रखने की यही छलपटावट इस युग के साहित्य का मूल कथ्य बन कर उभरी है ।

॥३०॥

1. डा० लक्ष्मी सागर वाण्यय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 78

पार्थ-कथाय

=====

साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यास: स्थिति और गति

=====

नये समाजार्थिक परिवेश बदलते हुए सम्बन्धों, संज्ञान और परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों, मूल्यों और प्रतिमानों के फलस्वरूप साठो-त्तर उपन्यास साहित्य में गुणात्मक परिवर्तन आया। न मात्र विनय एवं केजी की दृष्टि से अपितु विषय और विनय की दृष्टि से भी उपन्यास साहित्य नई जीवन दृष्टियों का साक्षी बना। विभिन्न मानवीय समस्याओं और नवीन मूल्यों के ज्ञानात्मक सीखने में उसकी परिधि और फल दोनों को पर्याप्त विस्तृत रूप प्रदान करके उसे मजबूत आयातों से परिचित कराया।

साठोत्तर उपन्यास अस्तित्वबोध के परिपार्श्व में टूटते-झुटते आदमी की नियति, कल-बिगड़ते रिश्तों, मूल्यों और नई परिस्थितियों और नूतन परिवेश की आत्माओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ बन कर उभरा है। इस युग के उपन्यासकारों ने युगीन मानव के अस्तित्व की सीखनाओं और युगीन जीवन की समस्याओं से गीरे रूप में सम्पृक्त होकर उपन्यास के क्षेत्र पर ज़ोर धारण एवं जीवन छाना चित्रों का निर्माण करते हुए साहित्य और जीवन दोनों को नई ऊर्जा और ऊँचा प्रदान की है।

एक समर्थ और सतत गति विद्या के रूप में साठोत्तर 'उपन्यास-रचना की सम्पूर्ण गतिविधियों औपन्यासिक विनय एवं विज्ञान की सीख' में

संभव है। वैश्विक उपन्यास की भूमिका के समानान्तर यह छोटी सैनिकील
आती है।¹ तब साथ ही आगे-आगे परम्पराओं, आस्थाओं, नैतिक मान
दंडों और प्राचीन आधार संहिताओं में पर्याप्त परिवर्तन हो चुके थे। अन्तोग
और इसीप्रकार अना तिकता आगे जा रहे थे। पुराने जीवन मुख्य त्रुटिः
हो चुके थे और मानवीय अस्मिता की स्वाभ्यता के नए तोपानों की छोटी का
कार्य प्रारम्भ हो चुका था और मूल प्रश्न मानवीय अस्तित्व दोष और अस्मिता
की सार्थकता का था। संभव है प्रभावित और त्रुटिः व्यक्तिगत की पूर्णता का
था। इसी लिए सम्बन्धों और मूल्यों में अन्तिमकारी परिवर्तन हुए।

बौद्धिक वर्ग ने व्यक्तिवाद को जन्म दिया और उसने अस्तु की
सीमित परिधि उसका भाग्य बन गयी। अस्तित्ववाद ने अस्मादी भोगवाद को
जन्म दिया परन्तु परिवेश और परिस्थितियों का विचार मध्य वर्ग अपने समझौता
म कर रहा और अपने दुःख-उपदुःख की प्रक्रिया और अपनी पञ्चान्तिक विवशता
को देखकर निष्क्रिय होकर बैठ गया। नैराश्य संज्ञा, कृष्ण, धूल, पञ्चकीपन,
अनकीपन, विवशता उद्देश्यहीनता और नष्टक जाग्रोह ने उसे अन्तर्मुखी बनाकर
'काम सागर' में डूबे दिया और उसका पूर्ण स्तर्प और विद्रोह नारी करीर तक
ही सीमित होकर रह गया। इन परिस्थितियों के अन्तर्मुख व्यक्ति और समष्टि,
राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रियता की मान्यताओं में भी परिवर्तन आया। इस प्रकार
विभिन्न जीवनानुसंगों यथार्थ के विविध स्तरों और आधुनिकता की पीठिका पर
साठोत्तर उपन्यास का स्वरूप-निर्धारण प्रारम्भ हुआ।

विद्रोह, अंगीति, संज्ञा और पञ्चकीपन ने साठोत्तर उपन्यास
की जिस आधुनिक मानसिकता और वैचारिकता का निर्माण किया है वह मानसिकता

1. डा० अङ्गसीर जोड़ा : आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास,

और वेवास्तवता का निर्माण किया है वह मानसिकता वस्तुतः मुख्य संज्ञक और बौद्धिक संज्ञाना की मानसिकता रही है। जीवन की विभिन्न जटिल सामाजिक अभिवृत्तियाँ, विभिन्न उपन्यासकारों को जीवन और समाज की वैविध्यमयी पृष्ठभूमि के रूप में यथार्थ के विभिन्न आयाम और सोपान प्रदान करती है। साठोत्तर उपन्यास-साहित्य में भी जीवन की यही अभिवृत्तियाँ जीवन और सागर रूप ग्रहण करती हुई दिखायी देती हैं।

साठोत्तर समाजार्थिक परिवर्तन न्यायिक परिवर्तनों का साक्षी बना है। नौह भंग के प्लस्टर बड़े प्रमाणों की प्रतिस्थापना और नये मानवीय रिक्तियों के अन्तः सूत्र के विनाश का प्रक्रिया और उद्घाटन स्वच्छ की दृष्टव्य है। केरोजगारी, जनसंख्या - बृद्धि, सरकारी व्ययों और योजनाओं का लोकलापन, कृषि का क्षम और जल के सम्बन्ध समाजवाद की स्थापना, प्रदूषण, जैविकता, पारवात्य प्रवृत्तियों का प्रभाव समाज की नई दिशा यदि नै साठोत्तर समाज के एक नये रूप में टाकना प्रारम्भ कर दिया है। प्लस्टर महानगरीय जीवन की जटिलता, यंत्रीकरण और स्वार्थ ने एक अन्तर्गत और अतिरिक्त मानव-निर्माण की और पग बढ़ा दिये हैं।

आज के जीवन की गहरी आवश्यकता कुछ गंभीर आत्म ऊर्जा की अभाव और उसकी विनाश है। साठोत्तर उपन्यास साहित्य इस अभाव में मानवीय धरातल पर खड़ा होकर आधुनिक मानव को उसके स्वयं की विनाश के पूर्ण अन्त प्रदान करता है। उसका मुख्य लक्ष्य व्यक्ति, समष्टि और साहित्य के सम्बन्ध के माध्यम से एक स्वस्थ परिवर्तन का मार्ग रखा है। इस प्रसंग में डा० केनेथ जेडी का यह कथन दृष्टव्य है कि "व्यक्ति समाज, राजनीति और साहित्य की शक्तिगत एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण करती है। एक सम्पूर्ण देश को जन्म देती है।"¹ साठोत्तर हिन्दी - उर्दू उपन्यासों के केन्द्रीय सीद्धान्त की

शिनाखत भी रही अन्तरंगता में की जा सकती है ।

साठोत्तर उपन्यास की एक अन्य विशेषता उसके स्वर का आक्रोश और जुझारूपन है । आक्रोश के यही स्वर इस युग के लेखन को पिछले लेखन से विशिष्ट कर देते हैं । साठोत्तर युगीन उपन्यासों में परिवेश की पीड़ा और आत्म बोध की प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति साकार रूप ग्रहण करती हुई दृष्टिगत होती है । इन उपन्यासों को युगीन-यथार्थ और युग बोध की प्रतीति कराने में भी पूर्ण सफलता मिली है । इस प्रकार साठोत्तर "उपन्यास अपने काल के भीतरी वेहरे को उन चेतन अवचेतन प्रवृत्तियों और द्वन्द्वों को जो इतिहास बना रहे होते हैं, उद्घाटित करते हैं ।"¹ यही युगीन सम्प्रकृता आधुनिकता की निवैयक्तिक पीठिका पर साठोत्तर उपन्यास को नये फलक प्रदान करती है ।

जीवन का खोखलापन और वर्तमान समाज के अन्तर्द्वन्द्व साठोत्तर समाज में मुखर रूप ग्रहण करते दृष्टिगत होते हैं । "कहना चाहे तो हम कह सकते हैं कि बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एक अजीब असन्तोष अविश्वास अस्वीकार वैचारिक संघर्ष साथ ही मानसिक शिथिलता परम्परा से कली आ रही जीवन पद्धति के खोखलेपन के एहसास का जन्म दाता है ।"² मानव विभिन्न बन्धनों से आक्रान्त होता जा रहा है । उसके जीवन सत्य परिवर्तित होते जा रहे हैं । यही कारण है कि इस युग का उपन्यासकार "मानव मूल्य नैतिकता औत्तिकता वैज्ञानिक और टेक्नालोजिकल प्रगति के बीच भूख, नवीन परिस्थितियों में यौन सम्बन्ध आदि के विविध पक्षों के समाधान ढूँढना चाहता है ।"³ फलस्वरूप परंपरागत उपन्यास रूढ़ि में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं । साठोत्तराय उपन्यासकारों

1. डा. नवल किशोर: आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थव्यवस्था, पृ० 9

2. डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 75-76

3. वही , पृ० 77

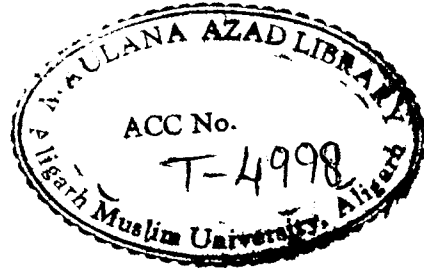
की मुख्य वेषण व्यक्ति के स्वतन्त्र अस्तित्व एवं उसकी गरिमा को स्वीकार करने हुए उसी अरिग आभिव्यक्ति ही रही है। वस्तुतः साठोत्तर उपन्यास मानव के छड़-छड़ होने और फिर खुद की मार्मिक गाथा है जो व्यक्ति और समाज दोनों के ऊपर 'और बाहर' को प्रत्यक्ष व्यक्त करती है।

साठोत्तर उपन्यास परिवेश प्रधान है। उसमें व्यक्तिगत चरित्रों का महत्त्व समाप्त हो जाता रहा है। साठोत्तर उपन्यास "केवल जीवन में छिपे हुए मानव का प्रतिबिम्ब नहीं है। वह रक्षाकार की रक्षा-प्रक्रिया से गुजरने वाला एक ऐसा स्वीदनात्मक सत्य है जो व्यक्ति मुक्त होते हुए भी समष्टिगत पद प्राप्त कर अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।¹ यही वह स्वीदना बिन्दु है जो साठोत्तर-उपन्यास को आधुनिक बनाता है। वस्तुतः "आधुनिकता सामान्य चिन्तन क्षेत्रों में पुराने पत्र से प्रमाण के पर्याय के रूप में स्वीकृत हुई है।² और साठोत्तर उपन्यास की यही आधुनिकता उसे जीवन्त इ सत्त्वतः और स्थिर बना देती है।

अपनी विवेकपूर्ण दृष्टि के कारण इस युग का उपन्यासकार यथार्थ का सामना करना चाहता है। उसका विश्वास और आस्था पलायन में नहीं स्वर्ग में है। अतः इस युग के उपन्यासों में जीवन यथार्थ के पक्ष पर विकसित होकर व्यक्तिगत को पूर्णता प्रदान करता है। व्यक्ति और समाज के नये सम्बन्ध सुझावों की उम्माद करे हुए इस युग के उपन्यासकार ने सामाजिक सम्बन्धों को एक नये परिदृश्य में देखने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि साठोत्तर "उपन्यास व्यक्ति की अस्वस्थ मनोवृत्तियों की गाथा मात्र, भावुकता का मार्मिक दस्तावेज़ या गलत रूपी महाकाव्य न होकर समाजोन्मीलन जीवन छण्डों या धनीधुर कथों में

1. डा० लक्ष्मी सागर काव्याय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 39

2. गंगा प्रसाद किमल: आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में, पृ० 7



निहित अर्थ एवं मूल्यों का स्तरेषण करता है, स्पष्टीकरण करता है। वह मानवीय सम्बन्धों, घटनाओं एवं क्षणों को नए अर्थ तक ले जाता है और मानव-मूल्य की नई मर्यादा स्थापित करने की चेष्टा करता है।¹ वह परम्पराओं को पूर्ण रूपेण स्वीकार नहीं करता और प्राप्त सत्थों का कलागत सत्यता के साथ प्रयोग करने की चेष्टा करती है। वस्तुतः आधुनिक मानव के सम्पूर्ण जीवन क्रिया व्यापारों और अस्तित्व के सम्मुख ही एक प्रश्न चिन्ह लग गया है और इस प्रश्न चिन्ह समन्वित स्थिति एवं जीवन दशाओं का चित्रण ही आज के उपन्यास का प्रमुख लक्ष्य बन गया है। आज कला का कोई अस्तित्व बिना इस निरन्तर स्थिति के नहीं है कि उस पर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। इन्हीं विकास और क्रान्ति आंदोलनों ने एक निरन्तर स्कान्त स्थिति पैदा की है।² इसी स्कान्त स्थिति ने साठोत्तर उपन्यास को भी नये कलात्मक स्तर प्रदान किये हैं। रोलो-मेय के अनुसार किन्हीं ऐतिहासिक कालों में जीवन के भ्रमजाल पहले से अधिक स्थिर एवं स्थायी लगने लगते हैं, इन्हें जीना और इनके सम्बन्ध में कोई ठोस - निर्णय ले पाना पहले से अधिक पुरुह हो जाता है। हमारा समय इसी तहर का समय है। फलस्वरूप आज के उपन्यास में भी आज के युग के विमर्श की शिनाख्त की जा सकती है।

इस युग के उपन्यासों में जहाँ एक ओर प्रेमचन्द्रात्तर प्रवृत्तियों विद्यमान रही वहीं उनमें कतिपय नवीन प्रवृत्तियों के दर्शन भी होते हैं। अस्तित्ववाद, मानववाद, यथार्थवाद मनोविश्लेषणवाद व्यक्तिवाद और आधुनिकता की पीठिका पर आधृत इस युग के उपन्यासों की यात्रा बाह्य से 'अन्तर' की ओर

1. डा० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यासः, पृ० 65

2. _____-रियालिज़्म टुरियल्टी, एवर ग्रीन सं० 10, नं० 39
फरवरी 1966, पृ० 51

3. साइकोलोजी एण्ड ह्यूमन डिसेमा, पृ० 23

होती है। डा० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "आज के उपन्यास की विचारधारा प्रायः दो दिशाओं में उपलब्ध है। एक दिशा में उन वृत्तियों को लिया जा सकता है जिसमें जीवन तथा जगत् का चित्रण एवं मूल्यांकन प्रायः समष्टि सत्य, समष्टि-यथार्थ, समष्टि-मंगल के धरातल पर हुआ और दूसरी दिशा में वे वृत्तियाँ आती हैं जिनमें जीवन तथा जगत् को आँकने तथा परखने की कसौटी प्रायः व्यष्टि सत्य, व्यष्टि यथार्थ तथा व्यष्टि-हित की है।"¹ यद्यपि देश में बढ़ता हुआ आर्थिक वैषम्य अैतिकता और भ्रष्टाचार एकवर्ग को भोगवादी और नियतिवादी बना कर पलायनवादी बना रहा है क्योंकि "युद्ध की भोगी हुई संकट ग्रस्त स्थिति और देश की निर्धनता से निराशा, भय, अनिश्चयता और नियतिवादी विचारधारा को बढ़ावा मिला है।"² परन्तु इस युग के अधिकांश उपन्यासकार मात्र नियति को नहीं मानते, उनमें बहुआयामी संघर्ष-वेतना भी विद्यमान है। "वास्तव में उपन्यास संघर्ष की ही उपज है और उसका संघर्षात्मक रूप आज भी बरकरार है।"³ यही कार है कि साठोत्तर-उपन्यास में मानवीय संघर्ष और उसकी आन्तरिकता की खोज की जिज्ञासा भावना के फलस्वरूप मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों और मानवीय अन्तः में होने वाली प्रतिक्रियाओं का भी सशक्त अंकन हुआ है।

साठोत्तर उपन्यास की एक अन्य विशेषता यह है कि वह कहीं भी यथार्थ की पीठिका से डिगता दृष्टिगत नहीं होता। वह जीवन की विभिन्न अंगितियों पीड़ाओं, दुःख, एवं संक्रास को उसके यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है। वस्तुतः "यथार्थवाद वेदना से निवृत्ति नहीं स्वीकारता। मानव-जीवन की कृष्णार्ण वर्णनाएँ असन्तोषप्रद स्थितियों की भयंकरता से यथार्थवाद मुख नहीं मोड़ता। उनका

1. आज का हिन्दी उपन्यास, पृ० 16

2. डा० हेमेन्द्र पानेरी: स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ० 123

3. संधी प्रकाशन उदयपुर, प्र०स० 1974

3. डा० आदित्य प्रसाद त्रिपाठी, औपन्यासिक समीक्षा और समीक्षाएँ, पृ० 14

अनुभव प्रकाशन कामपुर, प्र०स० 1981

साहस के साथ विचार करता है। यह मानस की जड़ता पर तो विश्वास करता है पर आदर्शवादियों की भाँति उसे देखा नहीं जाता।¹ बदले हुए समय परिवेश का नाम यथायथ विचार करने वाले उपन्यासकारों के सामने के सामना-पिच दस्तावेज़ बन कर उभरे हैं। उनके अतिरिक्त नगरीय जीवन उनकी समस्याओं और तथार्थ के विभिन्न रूपों और स्तरों का उद्घाटन करने वाले उपन्यास भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

साठोत्तर उपन्यासों का प्रमुख वैशिष्ट्य उनकी अविच्छिन्नता की प्रवृत्ति रही है। यद्यपि इस प्रवृत्ति का उद्भव स्वामन्योजन में हुआ 'परन्तु साठोत्तर युग के उपन्यासों में केवल का दागदार जीवन अपनी सम्पूर्णता में मूर्तरित होता हुआ दृष्टिगत होता है। केवल विशेष के सम्पूर्ण जीवन, उसकी प्रत्येक धड़कन, री-रूप और रंग-रौश से सम्पन्न अविच्छिन्न उपन्यास की प्रथम अभिव्यक्ति है। केवल विशेष के माध्यम से न मात्र केवल विशेष का जीवन अपने मट-मेले रंगों में अभिव्यक्ति के नये क्षितिज का स्पर्श करता है प्रत्युत प्राकारान्तर से सम्पूर्ण परिवेश और जीवन का अपनी समग्रता में परिरक्ष भी करता है। इस प्रकार के उपन्यासों ने 'अविच्छिन्न जीवन' को स्पष्ट कर भारतीय जीवन के उभरे हुए, लुप्त हो रहे हुए, जेब-जुबों और मुख्य धारा का तीव्रमण्ट चित्रण किया है।² व्यक्ति के अस्तित्व के विषय के साथ ही अविच्छिन्न उपन्यासों में व्यापक अजीवन के तथार्थ के भी स्फूर्ति मिली जा रहा है। साथ ही साथ स्त्री-पुरुषों के बदले हुए सम्बन्धों और नृत्न यौन मान्यताओं की स्थापना भी दृष्टिगत होती है।

1. डा० सुरेश सिन्हा: हिन्दी उपन्यास, पृ० 75

2. रामदत्त मिश्र: हिन्दी उपन्यास पर सर्वज्ञान लेख, पृ० 10

इस युग के उपन्यासकारों को भावुक नारी की संघर्षशील मनःस्थितियों का अंजन करने में भी पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इस सन्दर्भ में डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय का यह कथन द्रष्टव्य है कि "परिवर्तित भारतीय परिवेश में ही नहीं, भारतीय और पाश्चात्य दोनों संस्कृतियों के साये में जीवन व्यतीत करने वाले स्त्री-पुरुषों या पत्नी और पति के सम्बन्धों की बदलती हुई परिस्थितियों के बीच पहचानने की उन्होंने कोशिश की है और कुछ नये आयाम खोज निकाले हैं।"¹ महानगरीय जीवन की जटिलता और इस जटिलता के परिप्रेक्ष्य में उत्पन्न होने वाले मानसिक तनाव और अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति यंत्रीकरण की प्रक्रिया और उससे निःसृत एकाकीपन जिसकी परिणति आत्म परायेपन में हुई इस युग के उपन्यासों के मुख्य कथ्य रहे हैं। स्त्रीय में "शहरी, मध्यम एवं निम्न मध्य वर्गीय जीवन को संवस्त करने वाली अनेक प्रकार की विडम्बनाएँ घुटन भरा वातावरण, यान्त्रिकता, कड़वाहट, कुरूपता, क्षुद्रता, जिन्दगी की नैतिक एवं वारिधिक गन्दगी एवं विकृति, खोखले आडम्बर टूटते हुए आदर्श और मूल्यों, संस्कार हीनता, जीवन के तनाव और विभिन्न स्थितियों की परस्पर टकराहट का, दूसरे शब्दों में बाहरी और भीतरी संघर्ष का कहीं तीये शब्दों में, कहीं व्यंग्य द्वारा, कहीं रुमानियत लिये हुए, कहीं कलात्मक सार्थकता के साथ कहीं केवल स्पष्ट वर्णन द्वारा, कहीं केवल वास्तविक जीवन के सन्दर्भ में सार्थकता लिये हुए वर्णन हुआ है और लेखकों ने जीवन के अर्थ की तलाश करने का प्रयास किया है।"² साठोत्तर हिन्दी और उर्दू दोनों साहित्यों के उपन्यासों में क्रमोवेश उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं।

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 84

2. डा० लक्ष्मी सागर वाष्णीय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 88

साठोत्तर उर्दू उपन्यास नवीन दिशाओं का अनुगामी तो बना है यद्यपि उसमें परम्परा-निर्वाह की भावना भी दृष्टिगत होती है। दार्शनिक कता का समावेश साठोत्तर उर्दू उपन्यास का मुख्य वैशिष्ट्य है। 'आग के दरिया' [1959] के युगान्तरकारी प्रभाव के फलस्वरूप इस युग में अनेक ऐसे उपन्यासों का भी सर्जन हुआ जिनमें मूल्य प्रवृत्ति और शिल्पगत एक रूपता विद्यमान है।

विभाजन की ब्रासदी ने उर्दू साहित्यकारों पर गम्भीर प्रभाव डाला था और वे किर्तव्य विमूढ़ होकर रह गये थे। विभाजन की भीषण ब्रासदी ने जहाँ भारतीय उर्दू लेखकों के सम्मुख एक शून्य और भयावह प्रश्नचिन्ह ल उप्स्थित किये वहीं पाकिस्तान के उर्दू लेखकों पर भी विभाजन की ब्रासदी से निःसृत विभीषिका ने गम्भीर प्रभाव डाला। स्वतन्त्रता के तुरन्त पश्चात् का पाकिस्तानी समाज और लेखक एक अभूतपूर्व दायित्व बोध, अज्ञान्ति और अस्तित्व को बचाये रखने के प्रयत्न से दो चार दृष्टिगत होते हैं। उनकी सभ्यता संस्कृति और विभिन्न परम्पराएँ विभिन्न कारुणिक और भयावह दृष्टान्तों की भीड़ में समाप्त प्राय हो गयी थी परन्तु फिर भी लेखक उसी गुमशुदह संस्कृति और समाज की खोज में संलग्न थे। फलतः पाकिस्तान में नये सांस्कृतिक मूल्यों की तलाश का कार्य बड़े स्तर पर किया गया।

भारतीय लेखकों की उर्दू रचनाओं में सांस्कृतिक गुमशुदगी का बोध तो अवश्य मिलता है और साथ ही मिट गयी और मिटती हुई सभ्यता का मातम भी परन्तु पाकिस्तान के उपन्यासों में न सिर्फ मूल्यों की तलाश अपितु नवीन पत्रिमानों को प्रतिष्ठापित करने का कार्य भी प्रयोग के धरातल पर किया जा रहा है और वह नये क्षितिज की तलाश में संलग्न है।

साठोत्तर सामाजिक परिवेश ने उर्दू उपन्यास को नव सोपान प्रदान किये हैं। साठोत्तर पाकिस्तानी उपन्यासों में वर्तमान सामाजिक संरचना

के फलस्वरूप नये मूल्य और नए प्रवृत्तियों उभरी हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमेशा हमारे सामने है। इसी [1930] है। वैश्विक स्तर पर मानवीय संघर्ष के सन्दर्भ में अन्तर सञ्वाद एवं तीव्र विरोध के अस्तित्व और आवश्यकता का अनुभव करने हुए इसे अनिवार्य समझ रहे हैं।

सामाजिक परिस्थितियों ने साठो-साठ उर्दु उपन्यास को वैश्विक उपन्यास के समानान्तर खड़ा करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया है और साठो-साठ उर्दु उपन्यासों ने वह वैचारिक, तन्मीकी और प्रवृत्तिगत बदलाव लाये हैं जो समस्त सैद्धांत में हो रहे हैं। मानव के अस्तित्व का दुःख, दर्द जो उसके परिवेश की देन है, इन उपन्यासों में मुखरित हुआ है। कोटा सिरी की, मुन्नाज़ मुन्नी और फात्मा खालिद ने सामाजिक परिदृश्य में यौन समस्याओं और मनोवैज्ञानिक उलझनों और ऊँटियों को सम्मिश्रित रखा है।

एक वादर मेरी ती [1962], सब गजीदह [1967], राज चोर और बाँद [] और पकना और जाउरी रात ' 'ग्रामीण जीवन के जीवन हस्ताक्षर हैं। इन उपन्यासों में ग्रामीण जीवन वहाँ की समस्याओं और परिवेश को बदलते हुए यथार्थ की दृष्टिभूमि पर एक नये चित्रण के साथ मूल्य क्षेत्र में उभेरा गया है। इन समस्त उपन्यासों का यह वैशिष्ट्य है कि यह ग्रामीण जीवन के किसी न किसी पक्ष का उद्घाटन करते हैं और बदलते हुए मूल्यों के साथ कले हुए यह प्रेमचंद भी परम्परा की अन्तर्गत बड़ी बंध गये हैं। यद्यपि कला चित्रण, वस्तु पर अन्य सभी दृष्टियों से गोदान अधिक महत्वपूर्ण है फिर भी ग्रामीण जीवन को केन्द्र लिये गये इन उपन्यासों में गाँव की बदरंग चिन्तनी मूर्तिमान हो उठी है। समावर्धित परिवेश, यौन समस्या और विच्छिन्न होते हुए जीवन मूल्य इन उपन्यासों में सजीव होकर उभरे हैं। अन्तर्गत ग्रामीण जीवन के हस्ताक्षर के रूप में यह उपन्यास नए सोपानों का सञ्चन करते हैं।

उदास मस्ते । । जगिन , उत्ती और लहु के
 पून विभाजन की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में विवेक बना कर लिखे गये
 उपन्यास हैं । इन सभी उपन्यासों पर विभाजन की गारदी और उसके उत्पन्न
 भयावह विभीषिका का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है । जगिन
 विभाजन की पृच्छामि में एक ईसो-सेसो परिवार है उजड़ जाने और उस पर
 पड़े विभाजन के प्रभाव को स्पष्ट करता है । उत्ती विवेका अन्य उपन्यासों
 की तुलना में इसकी संक्षिप्तता है । दूसरी और उदास मस्ते, और लहु के पून
 एक विस्तृत कथानक को लेकर कहे हैं । अतः कहीं-कहीं उपन्यास पर लेखक
 की गिरफ्त ढीली होती हुई प्रतीत होती है और वह प्रभाव उत्पन्न नहीं हो
 पाता जिसकी अपेक्षा होती है । "लहु के पून की कथातन्त्रा आरती के
 कठिनायद और गंधीवाद का चिन्तन मात्र होकर रह गया है और उदास मस्ते,
 उजड़ता कुंम के आदर्शवाद की मज़र भी गया है । परन्तु इन दोनों की लेखनी
 विभाजन की गारदी की छलाओं पर आकर कुन के अधि रीति है और जहाँ
 भी कथार्थ को उन्होंने हाथ से जाने नहीं दिया ।¹⁰

जमीना हाकमी 'कुत-आवे बहारा' में कथानक की समृद्धि के
 आधार पर निर्मित किया गया है और कथानक का क्रमिक विकास उपन्यास का
 वैशिष्ट्य कहा जा सकता है । बेना प्रवासी धारा की अवस्था ने यहाँ व्य-
 वस्था का रूप धारण कर लिया है । 'कुने जिगर होने तक' काल के काल का
 सजीव चित्रण करता है । इस उपन्यास की विशेषता यह है कि यह नायिका
 विहीन है परन्तु काल का प्रामाणिक तीन पाठों को बाँध लेता है । काल
 के दूरियों का चित्रण मानव मात्र के हृदय में कबूत को जागृत करने वाला है

10 डा० हाकम अ : उर्दू नायिक ड्रेम वीद के बाद, पृ० 394,

उर्दू पब्लिशर्स लिमिटेड मार्ग लखनऊ, 50 तं० 1973

और वह पाठक पर अपना गहरा और गम्भीर प्रभाव छोड़ जाता है। 'जाबलापा' एक भावनात्मक और रोमानो उपन्यास है परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसमें समस्त घटनाएँ परस्पर एक सूत्र में गूँथी हुई हैं। वस्तुतः "आगे बढ़ाई, जाबलापा और दूने ज़िगर होने तक अन्त - अन्त अन्तरे के सम्बन्ध हैं।"¹

साठोत्तर उर्दू उपन्यास के जीवन की मिडल से देखने पर हमें का तार्किक प्रयत्न दृष्टिगत होता है। "इस दौर के नायकों में हृद से ज्यादा बढ़ती हुई हन्धेआदिया, नफ्थियाती गहराई और ख़ीरत मिलती है। साथ ही पुरानी कदरों से हन्धेआद भी है। एहसासात ज़रूरी और ख़यालात को इस तरह देख दिया गया है कि वह अस्मिता वारिस कर लेते हैं और आद के बजाय ज़िन्दारों के नफ्थियाती पक्षियों को उजागर करते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि नायक ज़िगर अपने ज़िन्दारों की बातों गौर से सुना है और इसी वरकत में सन्ध्यात का खड़ी गहराई से मुराला करता है और इसी एहसास और आत्मुर को अपने नायकों की बुनियाद बनाता है।"² इस युग के समस्त उपन्यासकारों ने उर्दू में उपन्यास की महत्ता में श्रीवृद्धि की और मानव-समस्याओं से गहरी संयुक्ति में उन्हें सामाजिक सरोकार प्रदान किये। कुछ उपन्यासकारों के अतिरिक्त अधिकांश उपन्यासकारों ने गहरी सम्यता संस्कृति जीवन और शहरों में होने वाली समस्याओं को ही अपना विषय बनाया। नायक इसका एक बड़ा कारण यह रहा कि मनोवैज्ञानिक उत्कर्षों और जीवन के विभिन्न संसाधनात्मक अनुभवों से मात्र शहर ही जाग्रत होता है। यद्यपि काजी अब्दुल्लाह के उपन्यास 'सलामीदहे का परिवेश देहाती अवय है परन्तु ज्ञान से सम्बन्ध। जागीरदाराना घराने से शहरों आरंभता उन्हें शहर की पैसा से संयुक्त कर देती है।

1. डा० हासल अज़ुब: उर्दू नायक प्रेमचंद के बाद, पृ० 333

2. वही , पृ० 24

शास्त्र की परिस्थितियों और औद्योगीकरण ने जिस यांत्रिक मानव का निर्माण किया है, वह समाज से संकुचन न होकर उससे पृथक् है और एक ऐसे जीवन को स्वीकारने पर विवश है जो उसे एकाकीपन के पायलों में जकड़ कर देता है। अत्यन्त आत्मपरायापन और अन्तरीपन की प्रवृत्तियाँ उसे 'जन्मा' कर देती हैं। इस युग के उर्दु उपन्यासों में यही आत्मपरायापन, तीव्र और व्यक्तिगत समस्याएँ साकार रूप ग्रहण करती हैं। यही कारण है कि अधिकांश साठोत्तर उर्दु उपन्यासों में कथानक का विकास मात्र एक सुझावर पर आश्रित रहा है।

साठोत्तर उर्दु उपन्यासों की एक अन्य विशेषता यह रही कि इस युग तक आगे-आगे उपन्यास के तत्वों का सामान्य स्थापन हो गया। 'बस्ती' शायर का 'हम सत्त' आदि उपन्यास इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस युग के उर्दु उपन्यासों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता आत्म-निश्चयिता पर का देना रहा है जबकि पहले परिस्थिति परिवेष्ट सामाजिक और आर्थिक दबावों पर का दिया जाता था। इस युग का उर्दु उपन्यासकार विशेष रूप से अजीब की ओर उन्मुख दृष्टिमान होता है। साथ ही इस युग के उपन्यासों में गहरा संवेदन एवं मनोविश्लेषण के स्तर भी प्राप्त होते हैं।

चिन्तन के स्तर पर भी इस युग में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये और सांस्कृतिक सुरक्षा के प्रयत्न प्रारम्भ हो गये। इस युग के उर्दु उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य न मात्र प्रेमकथ की भाँति बाह्य समस्याओं का ही चित्रण रहा है प्रत्युत उन्होंने सामाजिक परिवेष्ट के दबाव के कारण पात्रों के मानसिक गठन और उनकी आन्तरिक भावना को प्रभावित होने हुए दिखाया है। इस युग के पात्रों की आन्तरिक आन्दोल और ऊर्ध्वान्द उनकी चित्रित कर देता है।

साठोत्तर उर्दू उपन्यास ने पात्र वाक्य परिस्थितियों के मात्र मूक द्रष्टा नहीं रहते अपितु उनका उन पर पर्याप्त प्रभाव भी पड़ता है। इस युग में भावनात्मक स्तर पर भी ज़ेद परिवर्तन आये और आन्तरिक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति मुखर होकर उभरी। फारूक खानिद ने 'त्याह जाहने' में एक ऐसी बेइया का चरित्र प्रस्तुत किया है जिसने कीवेल ने उमराव आम की भाँति ही बेइया बनने पर विचार किया परन्तु उसके चरित्र का वैशिष्ट्य बाहर से ज़ेद की याद है जो इस युग के उर्दू उपन्यासकारों का प्रमुख वैशिष्ट्य और सम्भाव्य कवच साबित होया।

इस युग के उर्दू उपन्यासों में परिवर्तित होने हुए समाज और ब्यक्तियों ने कलस्वरूप ज़ेद के ही दो भावना उत्पन्न हुईं जिनमें ज़ेदों की जीत की और उन्मुख कर दिया जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण वर्तमान की जीत या उपस्थिति को अनुपस्थित या गम्भीरतम युगों और समाप्त प्रायः सम्बन्ध या ज़ेदों की जीत में मिलता है और फिर यह प्रवृत्ति जीत युग में परिवर्तित हो गयी। इसका मुख्य कारण आत्मसमर्पण की अनुपस्थिति ही रही है।

मुस्लिम समाज जागीरदाराना समाज रहा है और स्वतन्त्रता तथा लोकतान्त्रिक बहियों के विकास ने समाज के इस बड़े वर्ग को बेमानी कर दिया था। उनके सम्बन्ध बोलकी और एक गयी की प्रतीति होने लगी थी फिर पुरानी मान्यताओं और परम्पराओं में कुछ न कुछ आस्था बनी हुई थी।

काज़ी अब्दुलगाफ़र, इन्तेज़ार हुसैन और हुंजुनस हेदर पूर्वज्मेन जीत की चिरफ़ूज में हैं। खदीजा मसूर, अब्दुल्ला हुसैन और इस युग के दूसरे उपन्यासकारों पर जीत का उल्ला गहरा और प्रत्यक्ष प्रभाव न लही फिर भी जीत की और उनका क़ायम अवयव रहा है।

जीत की और इस समाज का एक स्पष्ट उदाहरण इस्लाम युगवादी है

जिन्होंने इस युग में करबला की घटना को आधार बनाकर उपन्यास की सर्जना की । यद्यपि इनका यह उपन्यास अधिक महत्वपूर्ण नहीं है परन्तु लेखकों के बदलते हुए रुझान का प्रमाण अवश्य ही है ।

कुरुंतुल ऐन हेदर के समस्त उपन्यासों और रिपोर्टाजों का आधार भी अतीत ही है । वह अपने लेखन में गुप्तशुद्ध युगों सभ्यता और संस्कृतियों की खोज के कार्य में संलग्न रहती है । आग का दरिया' में वह हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता की किनाखत करने का प्रयत्न करती हुई उसके माध्यम से , समाज की महत्ता और उसमें होने वाले परिवर्तनों का दिग्दर्शन कराते हुए 'गौतम' के ऐतिहासिक पात्र के दुःख दर्द को प्रतीक रूप में स्वयं अपनाने का प्रयोग करके वर्तमान से मिला देता है । उनके अन्य उपन्यास की केन्द्रिय स्वेदना का मूल भी अतीत ही रहा है ।

उपर्युक्त विवेकन से स्पष्ट है कि साठोत्तर उर्दू उपन्यास जहाँ एक ओर नूतन दिशाओं का साक्षी बना वहीं विभाजन की ब्रासदी ने उसे कृष्ठा घुटन और संताप से भी आक्रान्त कर दिया । हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों स्थानों पर होने वाले परिवर्तनों और भूतन्त्र-संक्रमण ने इस युग के उपन्यास को पूर्णतया अतीत की ओर उन्मुख कर दिया । विभाजन की ब्रासदी के फलस्वरूप उत्पन्न दर्द और अस्तित्वबोध, यन्त्रीकरण, नगरीकरण के परिणाम स्वरूप एक अजनबी मानव का जन्म और उसकी समस्याओं की गाथा, उसके अन्तर्द्वन्द्व, उत्तर-दायित्व व्यष्टि और समष्टि का समन्वय, इस युग के उपन्यासों का मुख्य कथ्य बना है । संक्षेप में कहा जा सकता है कि यथार्थ की पीठिका ने इस युग के उर्दू उपन्यास को प्रामाणिकता की भिन्ति प्रदान की और वह निरन्तर व्यष्टि , समष्टि एवं उनकी समस्याओं को आत्मसात् करता हुआ उन्नति के पथ की ओर निरन्तर आसर है ।

तालोत्तर हिन्दी उपन्यास भी निरन्तर प्रगति का साक्षी बना है। इस युग में श्रेष्ठ पुराने हिन्दी उपन्यासकारों ने भी युग की आवश्यकतानुसार स्वयं को मोड़ने का प्रयत्न किया पर उनके क्रेम में आधुनिक जीवन समस्याओं तरिफाट समाज, बदलते हुए मूल्यों और सम्बन्धों एवं ऊँचों का नव स्वरूप प्राप्त नहीं होता जो इस युग की नया पीढ़ी के उपन्यासकारों का वैशिष्ट्य है। यक्षपाल का 'क्यों कौन' 1963, जेन्द्र का 'अन्तार' 1963, नागार्जुन का 'स्मरिका' 1963, मन्मथ नाथ गुप्त का 'आरतिन के तप' 1963, बाल कौरि रेड्डी का 'स्वप्न और सत्य' 1963, इलाबन्द्र जोशी का 'भुतबुध' 1969, अरु का 'एक मन्हीं कन्दील' 1969, अन्ना गोपाल सेठे का 'गोरा काज' 1971, आदि उपन्यासों में उस आधुनिकता की प्रतीति नहीं होती जो इस युग का वैशिष्ट्य है। मनीन भाव, भागिमाओं के प्रस्तुतीकरण में नयी पीढ़ी के लेखक अधिक तत्कल हुए हैं।

राजेंद्र यादव ने 'मदेये अजान पुल' 1963 में वर्तमान युग और आधुनिक जीवन की महत्त्वपूर्ण समस्या 'हीन भावना' से नायिका ने आक्रान्त दिया कर नायिका ने व्यापक आधुनिक जीवन के मानसिक ऊँचों का प्रतीक बना दिया है। नरेन्द्र रेवता ने अपने उपन्यास 'दो एकान्त' 1964 में स्त्री - पुरुष के क्लेश विपरीत और संतान समा के बदलते हुए मूल्यों की और समित किया है। नायक 'विशेष और नायिका 'जानीरा' के माध्यम से व्यक्ति को समष्टि से सम्बन्धित कर, स्वातन्त्र्योत्तर मध्यम वर्ग के तीव्रता को उकेरा गया है। इनके एक अन्य उपन्यास 'प्रथम फाल्गुन' 1963 में व्यक्ति ऊँच का समर्थ विशेष प्राप्त होता है परन्तु जीवन के व्यापक सन्दर्भों के जीवन का समर्थ आव है।

वर्तमान जीवन के आवकाश परिवेश के अनसुलझ स्त्री-पुरुषों के मध्य बदलते हुए सम्बन्धों का तत्काल छायात्मक मोलन काव्य के 'औरे बंद कमरे' 1961 में होता है। आज के युग में बड़े बड़े नों की परिस्थितियों के अनसुलझ उत्पन्न

होने वाली विद्वत्पारं मुख्य कथ्य हैं। एडव्सन्ट की समस्या मुहर रूप लेकर उभरी है। 'आराम' 1972 में मोहन रायस ने मुख्यतः जीवन की बन्धनों में जाबदस्तियों की समस्या स्थितियों का सकारात्मक विवेक किया है।

आधुनिकता, अस्तित्ववाद और व्यक्ति केन्द्रित दृष्टिकोण पर आधारित निर्मल वर्मा का 'ये दिन' 1964 अपना एक अलग वैशिष्ट्य रखता है। इस उपन्यास के समस्त पात्र लैंगिक, कृष्ण और मृत्यु-भय से जाहन्ना हैं। सामाजिक और नैतिक मुद्दों का उनकी दृष्टि में कोई स्थान नहीं है और न ही उपन्यास के पात्र समाज के प्रति किसी उत्तरदायित्व को स्वीकारते हैं। अस्तित्ववादी विचारणा पर आधारित कौन-कौन 'अने-अने अन्तरी' 1962 में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति पायी जाती है।

इस युग की नारी लेखिकाओं ने भी एक साहित्यिक प्रयोग किया है। 'उषा प्रियंवदा' ने 'बचपन बचने लाल दीवारे' 1961 और 'स्वर्गी नहीं राक्षस' 1967 में स्त्री स्वातन्त्र्य का प्रतिपादन करते हुए इस दौर की महिला को दिखाया है कि स्त्री अभी भी पूर्ण स्वातन्त्र्य का अनुभव नहीं कर पाती क्योंकि सामाजिक मान्यताएँ उनकी चारों ओर से घेरे हुए हैं। 'उषा प्रियंवदा', 'मन्नु भण्डारी', 'वृष्णा सोबती', 'ममता कानिया', 'मृदुला गर्ग' आदि की रचनाओं में यौन साहित्यिकता और उन्मुक्त भोग क्षिति के दर्शन किये जा सकते हैं।

'मन्नु भण्डारी' का 'आपका बंटी' 1971 इस दृष्टि से महत्त्व का अधिकारी है कि इसमें आत्म-बुद्धि स्त्री और उसके बच्चे का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व उभर कर सामने आया है। अर्थात् वह वास्तव है जो बच्चे के जीवन को अनिश्चय के सागर में छोड़ कर उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं होने देती।

'कल्याण सिंह' ने 'बासी फूल' 1967 में जीवन में मात्र सेक्स को ही महत्त्व प्रदान किया है परन्तु जीवन की अन्य समस्याओं की ओर कोई भी सीत नहीं

मिलता । जीवन की विडम्बना और खोखलेपन के दर्शन 'महेन्द्र भल्ला' के उपन्यास 'एक पति के नाश' 1967 में किये जा सकते हैं 'कृष्णा सोबती' ने 'मित्रो मरजानी' 1967 में और 'परदेसी' ने 'औरत एक बेहरे हजार' में उन्मुक्त भोगेच्छा का गहरा चित्रण किया है । 'शशि प्रभा शास्त्री' कृत 'अमलतास' 1968, 'श्याम व्यास' कृत 'एक प्यासा तालाब' 1968 और 'जानकी वल्लभ शास्त्री' कृत 'एक किरण सो झालिया' 1968 में भी उन्मुक्त भोग की अवतारणा की गयी है ।

'शिवानी' कृत 'कृष्णकली' 1969 'भैरवी' 1969 और 'बोदह फेरे' 1969 भी संस्कारों से ग्रस्त नारी की मुक्ति की उत्कंठा के प्रतीक हैं 'शान्ति जोशी' कृत 'मेरा मन कनवास दिया सा' 1966, 'उदास पन्ने' 1966, 'शून्य की बाँहों' में 1969, 'एक और बात' 1971, 'मछली और मरा जल' 1971 आदि में भी नारी जीवन की परवृत्ता और आधुनिक परिवेश के मध्य उनके फुटते हुए जीवन का ही अंकन किया गया है ।

'भीष्म साहनी' कृत 'कड़ियाँ' 1970 और 'प्रमोद सिन्हा' कृत 'उसका शहर' 1970 में भी विवाह और यौन को ही मूल कथ्य बनाया गया है । राम कुमार भ्रमर कृत 'कच्ची-पक्की दीवारें' 1970 'फाँसी' 1970 और 'काँच घर' के ताने-बाने भी सेक्स की पीठिका पर ही बने गये हैं ।

'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित' कृत 'कटा हुआ आसमान' 1971, राजेन्द्र अवस्थी कृत 'बहता हुआ पानी' 1971 में भी यौन का उफान दृष्टिगत होता है । गिरिराज किशोर कृत 'यात्राएँ' 1971 में नव दम्पति की भावनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों का अंकन किया गया है । 'ममता कालिया' कृत 'बेघर' में स्त्री पुरुष की समस्या को नूतन और परिवर्तित होते हुए आयामों में देखने का प्रयत्न किया गया है । 'दयानन्द वर्मा' कृत 'जिन्दाबाद' 'मर्दाबाद' 1970 भी राजनीति के आवरण में लिपटे सेक्स की ही गाथा है ।

'राजकमल बोधरी' ने एक पग और आगे बढ़कर अपने उपन्यास 'मछली मरी हुई' 1966 में 'लेस्बियन' जोरतों का ज्ञान करने का साहस किया है। डा० रामचन्द्र 'विमामिता' 1969 'रमेश उपाध्याय' कृत 'स्वप्न जीवी' 1971, रंजन वर्मा कृत 'अलङ्कार' 1970, ज्ञान सिंह मान कृत 'दीमक और दाघरे' आदि में भी यह प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित की जा सकती है।

परन्तु साठोत्तर हिन्दी-उपन्यास मात्र सेक्स-कृष्णों और वर्जनाओं से ही आक्रान्त नहीं रहा है प्रत्युत उसमें जीवन की विभिन्न समस्याओं और स्वस्थ दृष्टिकोणों का सकेत भी मिलता है।

'नरेश मेहता' कृत 'धूम' केतु एक श्रुति 1962 'नदी यशस्वी है' 1967 में सूक्ष्म मानसिक विश्लेषण के साथ ही साथ व्यष्टि और समष्टि के सार गभित समन्वय की ओर भी सकेत किया गया है। उनका प्रमुख उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' 1967 है जिसमें जीवन की विडम्बनाएँ, विसंगतियाँ और आधुनिक ज्ञानव मुखर रूप लेकर उभरे हैं। साथ ही सांस्कृतिक परम्पराओं की विरासत को भी उत्तरदायी रूप में स्वीकार किया गया है।

'सुरेश सिन्हा' कृत 'सुबह ऊँचे पथ पर' 1967 में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के मध्य वर्गीय परिवार की कहानी है जो जीवन की कटु वास्तविकताओं से संघर्ष करता है, पलायन नहीं करता। उपन्यास एक ओर जर्जर मान्यताओं पर प्रहार करता है तो दूसरी ओर नूतन स्वस्थ मूल्यों को प्रतिष्ठापित करने का प्रयास भी द्रष्टव्य है। यथार्थ और आदर्श को गम्भीर समन्वय के फलस्वरूप अस्तित्ववादी परि-
वेष्ट में भी चरित्र पलायन की ओर संघर्ष की ओर झुक कर स्वस्थ मनोवृत्ति के विकास में सहायक होते हैं। 'परमात्मा बाबू' और 'राजू' मुख्य पात्र हैं। 'सुरेश सिन्हा' ने अपने एक अन्य उपन्यास 'पत्थरों का शहर' 1971 में छठे दशक के भारत की दो पीढ़ियों के मध्य के मूक अन्तराल को भाषा प्रदान की है। एक ओर प्राचीन मूल्यों की रक्षा करने को तत्पर नवल बाबू हैं तो दूसरी ओर नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व

करने वाली उसी तीव्रता से जिन्हीं बन्धन और मर्यादा के ऊँठ को नहीं स्वीकारती। उपन्यास में युवा पीढ़ी के भ्रष्टाचार का स्पष्ट चित्रण हुआ है। दिवाली के दिन परतल पीढ़ी के वैवाहिक भ्रष्टाचार का स्पष्ट चित्रण भी दृष्टव्य है। "आधुनिक जीवन की विडम्बना को 'सुरेश सिन्हा' ने अपने नये उपन्यास 'पत्थरों का शहर' में व्यक्ति परिवार और समाज के विभिन्न स्तरों पर कुम्भता से उभारा है और इस समस्या का उत्तर पाने का भी प्रयत्न किया है। उनकी दृष्टि व्यापक रही है। इस जीवन का अध्ययन करते सारे आदमियों के बीच से ही उन्होंने मनुष्य का मार्ग खोजा है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि दुर्भाग्य मनुष्य की अस्मिता मिथित नहीं है। अस्मिता मिथित है होना और वह यों ही नहीं हो जाता। यौवना-जीवन की यौवना व्यक्ति को आती है, अभी उसकी गति की दिशाएँ चुनी हैं।"

'शिव प्रसाद सिंह' 'अमल-इमा बेतरणी' 1967 के द्वारा गाँव के बदलते हुए हुए चर्चा को व्यक्त करते हैं। 'जरेता' के माध्यम से सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश का सत्यतः ज्ञान किया गया है। जीवन की विभिन्न विशेषताएँ, नैतिक पक्ष, भ्रष्टाचार को विडम्बनाएँ, स्वतन्त्रता के परचास भी आज के जीवन का 'मूल' है। अभी भी आज है और वह ग्रामीण जीवन को सरलता और सादगी का प्रतीक था वह भी आज उस प्रवृत्ति का विकास करता जा रहा है। यह उपन्यास साठो-तर उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है, यद्यपि सम्पूर्ण उपन्यास हैं वहीं भी समस्या के समाधान की ओर इंगित नहीं किया गया है।

साठो-तर युगीन एक अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास 'गीतान सुख' का 'राग दरबारी' 1968 है। इस उपन्यास का मूल अर्थ भी गाँव की वैकल्पिक

1. डा० शिव भूषण सिंहका वक्तव्य उद्धृत: डा० लक्ष्मी सागर वाष्पाय: द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 123

जिन्दगी ही है। प्राकारान्तर से 'शिवपाल गंज' सम्पूर्ण भारत का रूप धारण कर लेता है और वहाँ की विसंगतियों, सम्पूर्ण भारतीय जीवन की विडम्बना और त्रासदी का प्रामाणिक दस्तावेज बन कर उभरती है। लेखक ने तीव्र व्यंग्य दृष्टि के द्वारा उपन्यास को नये त्वर प्रदान किये हैं। 'शिवपाल गंज' को आधार बनाकर लेखक ने सम्पूर्ण भारतीय परिवेश के अन्तः में झाँका और उसके विभिन्न पक्षों को उकेरा है।

'रमेश वल्ली' कृत 'चलता हुआ लावा' 1968 आज के समाज में कुठित मानव की मनःस्थितियों की ओर संकेत करता है। 'गिरिराज किशोर' कृत 'चिड़िया घर' 1969 में कार्यालयों में कार्य करने के ढंग और कर्मचारियों की मनोवृत्तियों को व्यंग्यात्मक रूप में उधेड़ा गया है।

'राही मासूम रजा' ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास आधा गाँव 1966 में एक सामान्य संस्कृति के टूटने बिखरने और एक सभ्यता के समाप्त हो जाने की गाथा गाई है। समस्त पात्र और सम्पूर्ण परिवेश से लेखक निकट से सम्बद्ध है। फलस्वरूप पात्रों से गहरी आत्मीयता अपने नैसर्गिक रूप में उभरी है। ग्रामीण जीवन की विडम्बनाएँ, अहम्, सौन्दर्य, प्रेम, घृणा और धर्म के खोखलेपन की ओर संकेत करने में उपन्यासकार को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उनके अन्य उपन्यासों 'टोपी मुक्ला' 1969, 'हिम्मत जोनपुरी' 1964, 'जोस की बूँद' 1970 आदि में भी भावनात्मक एकता, धार्मिक बनाया गया है।

'गिरिधर गोपाल' कृत 'कन्दील और कुहासे' 1969 स्वातन्त्र्योत्तर भारत में, स्वतन्त्रता से पूर्व देखे जाने वाले स्वप्नों के टूटने-बिखरने की गाथा है। हमारे समस्त स्वप्न टूट गये हैं और हमारा जीवन अनिश्चय और दिशाहीनता के पाश में आबद्ध दृष्टिगत हो रहा है। ईमानदार परेशान है। सम्पूर्ण उपन्यास में मानवीय दृष्टिकोण को उभारा गया है।

प्राचीन रुढ़ियों से आक्रान्त मध्यवर्गीय जीवन की क्षिणगत अमरकाम्त के 'काले उज्जले दिन' 1969 में की जा सकती है। उपन्यास में नायिका 'रजनी'

अनेक कष्ट सहकर भी सामाजिक अन्याय का प्रतिकार करने को उत्तर नहीं दीखती ।

ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करने की दृष्टि से 'राम दरबारी मिश्र' का 'जल टूटता हुआ' 1969 भी महत्वपूर्ण है परन्तु घटनाएँ एवं पात्रों का जाना-बाना बुना हुआ और आरोपित सा लगता है । ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करने में 'आधा गाँव' 'राम दरबारी', 'अलग-अलग बैतरणी', 'बकूल', 'औरे के विरुद्ध' आदि उपन्यास अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं ।

'गिरीश अस्थाना' ने अपने उपन्यास 'धूप छाँही रंग' 1970 में द्वितीय महायुद्ध के यथार्थ अनुभव और स्वतन्त्र भारत के बौद्धिक वर्ग की कृष्णताओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है । 'मनहर चोहान' ने 'आखरी सफा' 1971 में विघटित होते हुए मूल्यों की ओर इंगित किया है । 'मणि मधुकर' कृत 'सपेद मेमने' 1971 इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें राजस्थानी जीवन की विविधताओं और विडम्बनाओं को उकेरा गया है । 'बदी उज्जमा' कृत 'एक बूढ़े की मौत' 1971 में स्वतन्त्र भारत शासकीय कर्मचारियों और उनकी कार्य पद्धति पर तीव्र व्यंग मिलता है ।

'शैलेश मरियानी' कृत 'चौथी मुट्ठी' 1962 सुरेन्द्र पाल' कृत 'लोक लाज खोई' 1963 और 'मनहर चोहान' कृत 'तन्तुलन' असन्तुलन' 1964 में जीवन की आधुनिक स्थितियों का अंकन हुआ है । शरद देवड़ा कृत 'कालेज स्ट्रीट के मसीहा' 1966 और राजकमल चौधरी कृत 'शहर था शहर नहीं था' 1966 भी आज के जीवन की विसंगतियों और को अभिव्यक्ति प्रदान करता है ।

इस युग के दो अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास 'शानी' कृत 'काला जल' और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित कृत 'मुर्दाघर' 1974 हैं । 'काला जल' को शानी ने विसंगतियों के पाश में आवद्ध मुस्लिम समाज और उनके जीवन की असंगतियों संघर्ष, विडम्बनाओं और समस्याओं का जीवन्त हस्ताक्षर बना दिया है । जगदम्बा प्रसाद दीक्षित ने 'मुर्दाघर' में वैश्याओं के जीवन के यथार्थ को गहरी सर्वोच्च दृष्टि से परखा और प्रस्तुत किया है । अनुभव की प्रामाणिकता उपन्यास का मूल वैशिष्ट्य है।

'भीष्म साहनी' कृत 'तमस' 1974, कमलेश्वर कृत 'लौटे हुए मुसाफिर' , भी महत्वपूर्ण उपन्यास हैं और इनका वैशिष्ट्य उन प्रश्नों की ओर इंगित करने में है जो आज भी अस्तित्व में हैं। साम्प्रदायिक विभीषिका के मध्य मानव के मानवीय गुणों को उकेर कर इन उपन्यासकारों ने एक बार पुनः मानव जाति को अपने भविष्य की ओर से आश्वस्त करने का महनीय प्रयास किया है।

उपर्युक्त उपन्यासों के अतिरिक्त इस युग में अन्य भी बहुत से उपन्यास दृष्टिगत होते हैं जिनमें जीवन को सार्थकता और पूर्णता प्रदान करने का प्रयास स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। मुख्य रूप से 'मायानन्द मिश्र कृत 'मारी के लोग सोने की नैया' 1967, ओम प्रकाश दीपक कृत 'कुछ जिंदगियाँ बे मत्तख' 1968, जगदीश चन्द्र पाण्डेय कृत 'गंगा के तट पर' 1968, ओम प्रकाश निर्मल कृत 'बहता पानी: रमता जोगी' 1969, आनन्द प्रकाश जैन कृत 'आठवाँ भँवर' 1969, डा० राजेन्द्र अस्थी कृत 'न जाने कितनी आँखें' 1969, मोहन चौपड़ा कृत 'सुबह के पहले' 1969, गोबिन्द मिश्रा कृत 'वह अपना चेहरा' 1970, प्रभाकर माथवे कृत 'किशोर' 1970, अभिमन्यु अंत कृत 'और नदी बहती रही' 1970, सुरज भान कृत 'सिम करन की लाल रेखा' आदि महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साठोत्तर हिन्दी उपन्यास ने चतुर्मुखी प्रगति की है और विकास के नये क्षितिज का स्पर्श भी किया है। जीवन एवं जगत् की समस्त समस्याओं को अपनी परिधि में आबद्ध करने को वह व्याकुल है। सेक्स से लेकर मनोविश्लेषण तक, नगर से लेकर ग्रामांचल की जिन्दगी की विन्दुपताओं तक, व्यष्टि से लेकर समष्टि तक, अस्तित्व बोध से लेकर मानववाद और आदर्शवाद, यथार्थवाद तक, इन सभी को इस युग के उपन्यासकारों ने समेटने का प्रयत्न किया है।

स्पष्ट है कि साठोत्तर हिन्दी और उर्दू उपन्यास नयी गति, नूतन दिशा और नवीन सोपानों के साक्षी बने हैं। यद्यपि इस युग में हिन्दी उपन्यास

साहित्य की जो बहुमुखी प्रगति हुई उसकी तुलना में उर्दू उपन्यास साहित्य प्रगति नहीं कर सका है परन्तु इसका एक बड़ा कारण विभाजन की ब्रासदी और उससे उत्पन्न भयावह सांस्कृतिक शून्य ही रहा है। इस युग के अधिकांश उर्दू उपन्यासकार अतीत की ओर उन्मुख दिखाई देते हैं क्योंकि उनके सम्मुख सबसे महत्वपूर्ण कार्य अतीत की यात्रा करके स्वस्थ मूल्यों का पुनः प्रतिष्ठापन है। तथापि उर्दू उपन्यास भी निरन्तर प्रगति की ओर आसर है और उसमें जीवन समाज तथा देश को नव और सार्थक आयाम प्रदान करने के सशक्त प्रयास जारी हैं।

इस युग की एक अन्य विशेषता यह है कि इस युग में जहाँ पश्चात्य प्रभाव को ग्रहण कर उपन्यासकार एक ओर पलायन, नेराश्व संक्रास और छुटन का अंजन कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर गांधी वादी और मानवतावादी दृष्टिकोण उन्हें संघर्ष और प्रगति की ओर भी उन्मुख कर रहे हैं।

निःसन्देह आधुनिक जीवन की अकलाहट एवं कसमसाहट को साठो-स्तर उपन्यास में आशिक अभिव्यक्ति ही मिल रही है क्योंकि "इसे इसकी सम्पत्ता में अभी तक स्पेटा नहीं जा सका है।"। फिर भी आधुनिक उपन्यास नूतन आयामों की सर्जना करता हुआ, नये परिवेश और नई दिशाओं को आत्मसात् करके, अनेक संभावनाओं को चरितार्थ करता हुआ नयी गति नये फलक और नयी उपलब्धियों का साक्षी बना है। जीवन-व्यर्थ को उसकी समग्र संभावनाओं सहित शिनाउत करके इस युग के उपन्यास ने सविदनशील मानव के अस्तित्व के सम्मुख अनेक प्रश्नचिन्ह उठा कर एक नये संघर्ष बोध को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस अभिव्यक्ति के अनेक स्तर रहे हैं। "सर्जनशील साहित्य की यह विशिष्ट पहचान है कि वह अर्थ के अगामित

स्तर प्रदान करता है ।¹ इसीलिए साठो स्तर उपन्यास अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों को जलाशयता हुआ जिजीविष के आन्तरिक धरातल पर बहु आयामी स्तर में रत है । इसीलिए "सम्बन्धों के बदलो हुए यथार्थ को अंकित करने की रचना प्रक्रिया आज के उपन्यास को औपन्यासिक धरातलों पर समर्थ बनाती है ।²

1. लिटरेचर एण्ड दि एमेज ऑफ मैः सियो लोएन थाल, केन्न हिल बोस्टन-इण्डोउकन से ।

2. अलवीर अरोड़ा: आधुनिकता के सत्य के आज का हिन्दी उपन्यास , पृ०

प्रमुख साहित्यिक उर्दू उपन्यास : आलोचनात्मक अध्ययन

सन् साठ के उपरान्त उर्दू उपन्यास ने एक समर्थ और सशक्त गद्य विधा के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। सन् साठ के बाद बदलते सामाजिक परिदृश्य, टूटते-जुड़ते आदमी की विप्लवमय, बनते-बिगड़ते स्थिति, बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता तथा आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ परक चित्रण उर्दू उपन्यास में मिलता है। यही कारण है कि सन् साठ के बाद के उर्दू की प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ नवीन परिवेश का महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इस अध्याय में हमने उर्दू की सन् साठ के बाद की प्रमुख औपन्यासिक कृतियों के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

अलीपुर का एली-मुमताज मुफ्ती § 1961 §

इस उपन्यास का फलक अत्यन्त विस्तृत है जिसमें गाँव से लेकर शहर तक और फिल्म से लेकर बाज़ारे हसन तक के जीवन का एक-एक पहलू उजागर हो जाता है। "एली" केन्द्रीय पात्र है जिसकी आप बीती ही उपन्यास का आधार रही है। विभाजन की त्रासदी का इस उपन्यास पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं किन्तु अन्त में इस ऐतिहासिक त्रासदी का अंशतः ध्यान अवश्य मिल जाता है।

उपन्यास अपने वास्तविक चरित्रों के सीधे परिचय से प्रारम्भ होता है। उसका नाम अलमास था लेकिन उसे घर में एली कहा करते थे। यह पूरा उपन्यास अपने चरित्र एली की त्रासदी है जिस पर शिक्षा और सम्यता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसका मानसिक स्तर और चिन्तन एक मध्य दर्जे के मानव का था जिसको मुमताज मुफ्ती ने विभिन्न अंदाज से उभारा है।

एली ने जिस परिवार में नेत्र खोले वहाँ उसके पिता की पत्नियों का एक समूह था और अन्यो की खोज भी जारी थी। "एली" का अस्तित्व और पर्यावरण "टेढ़ी लकीर" की शम्सन से पर्याप्त रूप में मिलता जुलता सा है। "इस्मत युगताई"

ने अपने उपन्यास का समर्पण उन अनाथ बच्चों के नाम करके जिनके अभिभावक जीवित हैं इसी अभाव को और स्पष्ट संकेत कर दिया था ।

"अलमास" उर्फ "एली" ने जब अलीपुर के आँगन में आँखें खोली तो स्वयं को मनोवैज्ञानिक उल्हानों से जाबू पाया । उसकी माँ "हाजरा" अपने पति की दूसरी पत्नी "सोफिया" की सेवा में एक सेविका की भाँति लगी रहती थी । उसने कभी भी अपना मुख नहीं खोला परन्तु वह अन्दर ही अन्दर टूटती रहती ।

"एली" की सारी मनोवैज्ञानिक समस्या और यौन मानसिकता का कारण उसके पिता का व्यवहार और नित नवीन पत्नियों को हविष है । "हाजरा" "सोफिया", "शामोन", राजू उसकी वैध पत्नियों थीं । "सारा", "रफीका" और अन्य कई स्त्रियों से भी उसके सम्बन्धों की सम्भावना थी । इससे पहले एली को मुब्हम अफ़्ग़ान सा रहसास था कि सब कुसुर अली अहमद का है और वह सोचा करता था कि न जाने वह ऐसा क्यों करते हैं । क्यों दरवाजा खुलता है और फिर बन्द हो जाता है.....लेकिन उसे ये मालूम न था कि वहाँ होता क्या है । बल्कि उसके दिल में ये दबी दबी सी आरजू थी कि कभी वह इत्तेफ़ाक से वहाँ चला जाये और इत्तेफ़ाकनु उसकी नज़र पड़ जाये ।

यह वह आधार भूत रहसास है जिस पर उपन्यास कार ने एली की मानसिकता और चरित्र को आधृत किया है । अनदेखी बन्द तृष्टि को तलाश करने की आंकाक्षा बच्चों के जिज्ञासु मन की ओर भी इंगित करती है । एली के चरित्र में उसके पिता की लापरवाही के कारण अभाव बोध है एली को अन्त तक इसका रहसास रहा "खोये इन्सान को तलाश में एली बराबर लगा हुआ था । कभी-कभी उसकी बहन फरहत भी शरीक हो जाया करती और वह दोनों मिलकर अपने बाप की हरकतों और सौतेली माँ के नुक़्सा देखा करते और अधिकतर उनका अर्थ निकालने का प्रयत्न भी करते । तबतम यह हुआ कि एली को एक बार अपने बाप की शादी में शाहबात भी बना दिया गया ।एली महसूस करता जैसे औरत एक मुअम्मा हो एक ऐसा मुअम्मा जो बगैर बन्द कमरे के हलन हो सकता हो । इस

ख्याल पर उसे शाहीद खादिशा महसूस होती कि एक बार उसे भी किसी औरत के साथ कमरे में बन्द होने का इत्तेफाक हो और उसके रूबरू भी वह असरार रूहायई खुल जाये, सिर्फ एक बार, एक बार ।

अतः उसने अपनी पड़ोसन विवाहित शारोफ की पत्नी "शाहजाद" से प्रेम किया उधर "शाहजाद" स्वयं भी मनोवैज्ञानिक मरुज थी, इसीलिए शारोफ की उपस्थिति का भी विचार न करते हुए एली में दिलचस्पी लेने लगी क्योंकि दोनों ही असन्तुष्टि की त्रासदी के पाशा में आबद्ध थे । बाद में एली फिल्मसाजी के लिये बम्बई जाता है मगर उस समय तक भारत विभाजित हो चुका था और हर तरफ नीरवता और गैर यकीनी परिस्थितियाँ थीं । अन्ततः एली का परिवार भी अलीपुर छोड़कर पकिस्तान की ओर रवाना हो गया ।

इस उपन्यास में यौन की आजुमाइश के जितने भी तरीके सम्भव हो सकते थे उन सबको उचित स्थान दिया गया । स्त्री और पुरुष का आदि सम्बन्ध यौन असन्तुष्टि और समरति का बोध भी स्थान स्थान पर होता है । अन्य उपन्यासों में इनका संकेत कम ही मिलता है । शौकत सिद्दीकी ने "खुदा की बस्ती" में या "कुरुतुलसैन हैदर" ने 'आखरी शास्त्र के हम सफर' में इसका हल्का सा संकेत तो अवश्य किया परन्तु मुमताज मुफ्ती ने अपनी पूर्ण शक्ति के साथ इनका चित्रण किया है । 'हाजरा' और 'रफ़ीयाँ' के सम्बन्धों को जिस तरह प्रस्तुत किया गया है और 'हाजरा' में जो बैबैनी और आत्मसमर्पण का जो अन्दाज प्रस्तुत किया गया है । उससे स्पष्ट रूप से "लिज्बियनिज्म" को बू आती है । ऐसी बू "इस्मत लुगताई" की "देदी लकीर" में भी है ।

इस उपन्यास का बहुत बड़ा अंग कल्पना और ख्यालात पर आधृत है । इसके चरित्र ख्यालों और सपनों में वह सब कुछ कर गुजरते हैं जिसकी सम्भावना यथार्थ जगत में सामाजिक बन्धनों की कारणा नहीं होती है । स्वप्न और कल्पना के पर्दे पर चरित्र नीचे हो जाते हैं और अपने अन्तस् को अभिव्यक्ति कर देते हैं ।

इस तकनीक के सहारे एली कितनी ही बार "शाहजाद" से मिला था उसके सामोप्य में बहुत सी रातें व्यतीत की थीं और उसके शरीर के स्पर्श से आनन्दित और रोमांचित भी हुआ था। शायद वह उसे दाँतों से काटना भी चाहता था ताकि काटे जाने से पहले उसको गरदन चबा ले और अपने आपको महफूज कर ले लेकिन उसके गरम लमात $\{ \text{स्पर्श} \}$ से अन्जाने में उसे दीवानावार चूमना शुरू कर दिया।¹ एली का यह एहसास मात्र शाहजाद तक ही सीमित नहीं था। वह किसी भी औरत से कहीं भी इस तरह मिल सकता था।

"एली के चरित्र में यौन और ममता एक दूसरे के पूरक रहे हैं। "सफिया" और अपने पिता की अन्य पत्नियों में वह यौन तलाश करता है और "शाहजाद" में ममता का तीव्र एहसास। यह "एली" के चरित्र के अन्तर्द्वन्द्व का एक पक्ष है। मुमताज मुफ्ती ने एली के रूप में एक ऐसा चरित्र प्रस्तुत किया जो हमारी तरह चिन्तन करता है, प्रेम करता है या पलायन करता है उसका विकास पूर्णतया वास्तविक है। वह अपनी नौकरी से मात्र इसी कारण अलग हो जाता है कि वह अपने पिता से ईर्ष्या का भाव रखता है और शिक्षा विभाग में उसके पिता के परिचित थे जो उसको सुरक्षा प्रदान कर सकते थे। वह अपने पिता का एहसान लेना नहीं चाहता था। समाज और सारे वातावरण में उसे अपने पिता का आस्तित्व बिखरा हुआ दृष्टिगत हो रहा था। उसका अन्दाज स्वाभिमान से परिपूर्ण है। - "मैं उस मुहकमे में नौकरी करना चाहता हूँ जहाँ बिलवास्ता अपने बलबूते पर तरकीबें हासिल कर सकूँ।

समग्रतया "अलीपुर का एली" एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। अली अहमद एली और "शाहजाद" के चरित्र अपने आन्तरिक जीवन और मनोवैज्ञानिक पेचींदगियों का गहरा रूप प्रस्तुत करते हैं। और पात्रों के इस आन्तरिक संघर्ष को मुमताज मुफ्ती ने बड़े कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है जो हमारे युग की स्पष्ट और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है।

1. अलीपुर का एली : मुमताज मुफ्ती पृ० 216

2. वही पृ० 1151

उपन्यास में विभाजन का आसौम संकेत नहीं परन्तु जो संकेत है वह बहुत ही अर्थवान हैं । पाकिस्तान बन गया । देश विभाजित हो चुका । इंसान को हिन्दु और मुसलमान के खानों में बाँट दिया गया परन्तु वह इतना अधिक सहमा हुआ है कि उसे स्वयं अपना अस्तित्व व्यर्थ दिखाई दे रहा है । वह घबरा कर अपनी पहचान खो बैठा है - "जो मैं मुसलमान हूँ : रामदीन चिल्लाता और फिर तमाम हिन्दुस्तान के मुसलमान उसके सामने कतार बाँध कर खड़े होकर चिल्लाते जो मैं भगवान अली हूँ जो मैं कुषन अल्ला हूँ, जो मैं गुलाम गुरु हूँ । हम मुसलमान हैं वह चिल्लाते-पाकिस्तान जिन्दाबाद पाकिस्तान जिन्दाबाद ।"

स्वप्न और कल्पना को तकनीक और विचार के स्तर पर लिखा गया यह उपन्यास "मुमताज मुफ्ती की भाषा और अपने विशिष्ट शिल्प के कारण पर्याप्त महत्वपूर्ण हो गया है और तकनीकी और मनोवैज्ञानिक उपन्यास के रूप में विशिष्ट महत्व का अधिभार है ।

तलाशो बहारा-जमोला हाशामी § 1961 §

"तलाशो बहारा" उर्दू की प्रतिष्ठित साहित्यकार "जमोला हाशामी" की वह महत्वपूर्ण सर्जनात्मक उपलब्धि है जिसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए उसे पाकिस्तान के सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पुरस्कार "आदम जी" से सम्मानित किया गया ।

"तलाशोबहारा" के कथानक का निर्माण और संयोजन अन्य महत्वपूर्ण उर्दू उपन्यासों की भाँति स्मृति के धरातल पर हुआ परन्तु अन्य उपन्यासों की भाँति यह उपन्यास पारम्परिक तरीके से विभाजन की त्रासदी का अंकन करने की अपेक्षा स्वातंत्र्योत्तर समाज में नारी के अधिक अस्तित्व महत्ता और नये युग में समानता के बोध को ही उभारता है । चिंतन की दृष्टि से यह उपन्यास विभाजन की त्रासदी से अधिक प्रभावित नहीं हुआ है तथापि समस्याओं और शिल्प की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास की विशिष्टताएँ इसमें समाहित हैं । स्वतन्त्रता का

जिसे इस उपन्यास में मात्र प्रसंगवशा आ गया है अन्यथा उपन्यास कार का लक्ष्य "कँवल ठाकुर" के गरिमामयी व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण और उसके माध्यम से साधारण नारी की स्थिति को उच्चता प्रदान हो है ।

सूत्रधार को "कँवल ठाकुर" से अगाध श्रद्धा थी और वह अपनी बहन को भी उसी आदर्श में ढालना चाहता था । इस तरह के आदर्शपात्रों की संरचना के कारण ही यह कहा जाता है कि उर्दू उपन्यास दास्तानी प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाया है । प्रत्युत इस उपन्यास का तो परिवेश भी कमोवेश दास्तानों जैसा ही है । इसीलिए यह उपन्यासख्ये और विषय के स्तर पर दास्तानों की पुनरावृत्ति है ।

"तलाशो बहारा" के अधिकांश पात्र और कँवल की अलोचना करने वाले पात्र अपनी निकृष्टता को स्वीकार कर लेते हैं । बनर्जी राजेन्द्र, राधेकृष्ण सभी उसकी श्रेष्ठता को स्वीकारते हैं । "शोभा" की अपने पात्रों में उसकी इय्या को स्वीकार करती है । इस भाँति "कँवलरानी" सर्वसम्मति से चरित्रवान और आदर्श स्त्री की संज्ञा प्राप्त करती है जो नारी होने के अतिरिक्त और सभी कुछ थी । नारी को विशिष्ट भावात्मक से परे भावुकता से रिक्त समाज सुधारक नारी शिक्षा में अग्रगण्य और नारी स्वातंत्र्य की जोरदार हामी ।

इस पूरे उपन्यास में नारी को विवशाता का पर्याप्त बोध "रोमेन्द्र और कुशनाबोस को मुकदमेबाजी के प्रसंग में देखा जा सकता है । सूत्रधार की बहन "बीना" पर उसके सुसुराल वालों ने जो अत्याचार किये और उसे जिस प्रकार सूत्रधार के पास आकर रहने को विवशा होना पड़ा वह भी इन्हीं परिस्थितियों को उकेरता है । "बीना" का परिणाम देखकर ही "कँवल" संयुक्त परिवार के विरुद्ध हो गयी और समाचार पत्रों में लेख लिखने लगी । अन्य उदाहरणों में वह अनाथ लड़की जो पोड़ा से संवस्त होकर औषधालय में पड़ी थी या वह बूढ़ी औरत जो सुपरिटेन्डेण्ट की माँ थी और जिसके शरीर में कीड़े पड़ गये थे । एक अन्य पात्र "नीरा" जो कँवल की परिचारिका थी और जो गाँव से किशोर के साथ भाग कर आयी थी और "किशोर" से राह आकर उसका साथ छोड़ दिया था । इस भाँति

इस उपन्यास में "बोना" "कृष्णा" "नीरा" विवशा नारियों का प्रतीक बन कर उभरी है ।

इसी तिलतिले की एक कड़ी "राधाकृष्णा" जो अपनी पुत्री को स्वयं मार डालने की कथा सुनाता है कि किस प्रकार उसने एक नारी "सुन्दरी" के साथ बलात्कार किया था और "सुन्दरी" ने अड़यन्त्र की रचना करके सुनियोजित ढंग से अपने लडके के प्रेम पाशा में "मोरा" को जाबद्ध कर लिया । राधाकृष्णा ने यह देख कर "मोरा" को मार डाला और जीवन भर मानसिक यन्त्रणा से ग्रस्त रहा ।

इतनी भौति नारियों की विवशाता यातना और यन्त्रणा के फलक पर तलाशी बहारा की संरचना की गयी है । स्वतन्त्रता के संघर्ष और देश विभाजन की जो प्रतिक्रिया हुई उसके बारे में कोई नया बोध इस उपन्यास में जन्म नहीं लेता ऐसा प्रतीत होता है कि "जमोला हाशामी" हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और सम्युलिडिम की ओर समाज के उन्मुख करना चाहती है परन्तु उन्हें इस उद्देश्य में सफलता नहीं मिली है और ऐसे स्थलों पर आम उपन्यासों जैसा सतही रहसास और खैय्या मिलता है ।

सम्पूर्ण उपन्यास में "कैवल ठाकुर" ही वह केन्द्रीय चरित्र है जिसके गिर्द उपन्यास घूमता है । वह उस पूरी व्यवस्था को बदलने का स्वप्न देखती है जिसमें नारी मात्र असहाय की स्थिति रखती है । वह कहती है "ज़िन्दगी की बुनियाद बदलने की ज़रूरत है । काम और कोशिश की ज़रूरत है । आमजहनी सतह को बदलने की ज़रूरत है और मैं यह काम करूँगी "कैवल ठाकुर" एक कालेज की स्थापना करती है और नई पीढ़ी को एक नई दिशा देना चाहती है । वह संघर्ष करती है कुछ सफलता भी प्राप्त करती है परन्तु समय और इतिहास पर उसका कोई अधिकार नहीं है और इतिहास की एक दुर्घटना के परिणामस्वरूप उसके स्वप्न चूर-चूर हो जाते हैं और स्वप्नों के इस पराजय की आसदी ही वस्तुतः इस उपन्यास का विषय है ।

इस उपन्यास में लेखिका ने समाज की कतिपय महत्वपूर्ण और कटु समस्याओं का संस्पर्श किया है परन्तु चरित्र-चित्रण और अभिव्यक्ति में गहराई के अभाव में उपन्यास सशक्त नहीं बन पाया है। "कैवल ठाकुर" के चरित्र की आदर्श स्थिति और विभिन्न स्थितियों का बार-बार चित्रण उपन्यास के समोष्ठित प्रभाव को कम कर देता है। यद्यपि उपन्यास गाँव के सादा जीवन यथार्थ और घरेलू चित्र भी प्रस्तुत करता है और उसमें ग्रामीण परम्पराओं रस्मों रिवाज और आस्थाओं का जीवन्त चित्रण भी मिलता है लेकिन उपन्यास में इस प्रकार के अंग नगण्य मात्रा में ही हैं।

अपनी समग्रता में "तलाशो बहारा" किसी नये फलक की संरचना नहीं करता और उपन्यास नारी की असहाय और विवशा स्थिति का मात्र सैकेतक बन कर रह गया है यद्यपि शिव और पार्वती का वर्णन करके या गंगा के शिव की जटाओं से निकलने के प्रसंग को रखकर अथवा सीता और राम जी की ओर इंगित करके अकारण उपन्यास में प्रभाव उत्पन्न करने की चेष्टा की गयी है परन्तु यह अंश भी उपन्यास को महत्वपूर्ण नहीं बना सके। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण उपन्यास नारी के जीवन की यातनामय स्थितियों और पीड़ाओं की त्रासदी का उदघाटन बन कर नारी जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने में सफल अवश्य हुआ है।

एक चादर मैली सी: राजेन्द्र सिंह बेदी-1962

राजेन्द्र सिंह बेदी एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। उनका एक मात्र लघु उपन्यास "एक चादर मैली सी" एक सिख घराने की सभ्यता और परम्पराओं का सफल चित्रांकन करता है। चादर डालना वस्तुतः विवाह की स्वीकृति समझा जाता है। यह चादर मैली इसलिए हो जाती है कि रानी जो प्रस्तुत उपन्यास का एक सशक्त चरित्र है के पति की हत्या के पश्चात् उसका विवाह उसके देवर से कर दिया जाता है उसका प्रथम पति "त्रिलोका" जिसका काम इक्का चला कर घर का पोषण करना और शाराब के लिए चौधरी साहब को विलास का समान उपलब्ध कराना था। चौधरी साहब ने विलास के लिए एक धर्मशाला बनवा रखी थी जिसमें

सभी परिचित थे लेकिन जागीर घराना व्यवस्था से संतुष्ट थे "तिलोके" का काम था भूनी भटकी लड़कियों को धर्मशाला का पथ दिखाना और बदले में शराब की बोटल प्राप्त करना ।

लेकिन जब एक बार एक आदिम लड़की को तिलोके की सहायता से हवस का शिकार बनाया गया तो उसके भाई ने प्रतिशोध में तिलोके की हत्या कर डाली रानी विधवा हो गयी और अपनी ससुराल पर व्यर्थ का बोझ थी । उसके चार पुत्र थे लड़की जवान होने वाली थी । अन्तोगत्वा उसके देवर मंगल को मार पीट कर इस बात के लिए तैयार कर लिया गया कि वह रानी से विवाह कर ले हालाँकि वह युवा था और उसके अपने भी कुछ स्वप्न थे मगर उसे समझौता करना पड़ा । वह अर्थोपार्जन करता और रानी खर्च करती यद्यपि उसे अपने प्रथम पति का अभाव खलता रहता । वह एक अनोखी कष्टमकष्टा से दो-चार थी । वह सोचती कि मंगल ने उससे शादी करके उस पर एक बहुत बड़ा उपकार किया है । अतः उसमें संकोच होना के स्थान पर विनम्रता अपना हो गयी थी उसका मंगल पर अधिकार हो क्या था । तिलोका भी तो था उसमें वह इतनी खायफ न रहा करती थी जो मुँह में आता धड़ से कह डालती थी चाहे बाद में मार हो खाती ।¹

इस उपन्यास में बेदी ने हमें एक ऐसे चरित्र से परिचित कराया है जिसमें वफादार पत्नी और हमदर्द नाँ की उत्कृष्ट भावना मौजूद है ।

वह मंगल से विवाह करना नहीं चाहती परन्तु जब उसे विवाह करना पड़ता है और सुहागरात आती है तो उसने मंगल को यह मान भी नहीं होने दिया कि उसकी इच्छा नहीं थी । यद्यपि उसका सम्बन्ध बदल चुका था तथापि बुजुर्गाना सहानुभूति का स्वरूप नहीं बदला था । रानी मंगल के जख्मों को सारी रात सेंकती रही । वह जीवन के इस नये अनुभव को अधिक रुचिकर नहीं बना पा रही थी । इस रात रानी एक बहन बीवी और माँ की तरह मंगल के जख्मों पर सेंक करती रही ।² रानी अपने बड़े होने के बोझ से अन्त तक पीछा नहीं छोड़ा सकी थी उसका सबसे अधिक चिन्ता अपनी बड़ी पुत्री की थी । रानी की सास उसका सौदा करना चाहती थी । यह सुन कर वह भुर्राई आज कौन आया था

1. एक चादर झेली ली, पृ० - 87-88

2. वही, पृ० 72

यहाँ ।' किसकी हिम्मत पड़ी यह दहलीज फाँदने की ।' मेरी बेटी का सौदा करने का ।¹ पृ० 45 । रानो ने इसी पुत्री के लिए मंगल से शादी स्वीकार की थी मगर यह विवाह पुत्री को पसन्द न था ।

प्रस्तुत उपन्यास में बेदी औरत की आधारभूत मनोवैज्ञानिक उलझनों का संस्पर्श करके यह बताना चाहते हैं कि नारी हर स्थिति में नातृ नारी है उसकी भावना मात्र एक है ईर्ष्या "इससे पहले कि रानो प्यार से बेटी के सिर पर हाथ फेरती बड़ी ने अपने बड़े बड़े नाखूनों से माँ का मुँह नोच लिया और बोली जा तू उससे अपना मुँह काला करवा ।"² पृ० 46

सम्पूर्ण उपन्यास में रानो का चरित्र उलझन और कष्टमय अन्तर्द्वन्द्व का शिफार है । एक अन्य चरित्र तिलोका है जो उपन्यास में बहुत अल्पकाल के लिए आता है परन्तु अपना दीर्घ कालिक प्रभाव छोड़ जाता है । मंगल तिलोका का छोटा भाई है जिसे बाद में अपनी इच्छा के विपरीत रानो से विवाह करना पड़ा वह रानो को माँ की भाँति स्वीकार करता था और उसने अनेक प्रकार से मना किया मगर उसको मार मोट कर उसका विवाह रानो से कर दिया गया ।

मंगल के चरित्र में भी वही अन्तर्द्वन्द्व दिखाई गयी है जो रानो के चरित्र में थी । वह मंगल से सहानुभूति रखती परन्तु उसे आज भी तिलोके याद था । यद्यपि मंगल को एक अन्धा पति था परन्तु स्वामते याद आज भी जाती थी परन्तु समय एक बड़ा मरहम है । वह सब कुछ विस्तृत करके एक आदर्श पति बन गया और रानो की पुत्री का विवाह भी वह उसे अपनी पुत्री समझ कर ही करता है - "मैं तो इसके लिए बिक जाऊँगा रानो, मंगल ने बात जारी रखते हुए कहता है इसके लिए मुझे इक्का और बग़्घी क्यों न बेचना पड़े ।"³

बेदी की कला की उत्कृष्टता यह है कि उन्होंने सीमित कैनवास पर एक ऐसे उत्कृष्ट उपन्यास की संरचना कर दी जिसमें पुरुष और नारी के मनोविज्ञान की ओर संकेत किये गये हैं । जीवन के किसी गहरे चिन्तन या दर्शन को तलाशा इस उपन्यास में नहीं की जा सकती । यह एक सीधा-सादा सामाजिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । कहीं कहीं पर प्रतीकात्मक शैली के संकेत भी मिलते हैं

1. एक चादर मैली थी, पृ०-45

2. वही, पृ० - 46

3. वही, 89

- "बाबा हरी दास को इतनी लम्बी सजा क्यों ? ... इसलियेकि इसका लोहे का लंगोठ बोसोदह कपड़े का निकल आया था " ¹

बेदी उपन्यास की कला से न केवल परिचित हैं प्रत्युत उसके औचित्यपूर्ण प्रयोग भी जानते हैं और कभी कभी संकेतो और विशिष्ट भाषा से ही सब कुछ समझा देते हैं। पाठक को क्षेप में ही सब कुछ मालूम हो जाता है और मूल कथा के मध्य दूसरी कथा के संकेत पाकर पाठक उनसे भी परिचित हो जाता है। और प्रभाव में भी वृद्धि होती है। प्रस्तोकरणा के इस अन्दाज से बेदी के मन में निखार आ जाता है। वह 'जासातोर' मिथक का प्रयोग लेखन धरातल पर नहीं करते। इन मिथकों और उनकी पृष्ठभूमि से यदि पाठक पूर्ण रूपेण परिचित न हो तब भी भावों का संप्रेषण हो हो जाता है। शिवजी और पार्वती गार्हस्थ जीवन की सफलता के दो नाम है। बेदी ने भी इनके प्रयोग से अर्थवत्ता पैदा की है।

उपन्यास की भाषा भी एक विशेष प्रभाव रखती है। उपन्यास का पहला वाक्य ही उपन्यास के भ्यावह परिवेश की ओर इंगित कर देता है

- "आज शाम सूरज की टिकिया बहुत लाल थी।" ²

बेदी ने अपने शिल्प में कहावतों और कुछ ऐसी परम्पराओं को भी स्थान दिया जो प्राचीन काल से चली आ रही है। बुनियादी तौर से बेदी के शिल्प का मूल भारत की प्राचीन समस्याओं और धार्मिक परम्पराओं से जाबद है। भाषा में एक विशिष्ट खुरदुरापन भी दिखाई देता है पर इसी खुरदुरे पन में उपन्यास का सौन्दर्य निहित है।

बस्ती-इन्तेज़ार हुसैन-1980

इन्तेज़ार हुसैन ने देश के विभाजन को सार्थक आयाम के रूप में स्वीकार करके और जनसंख्या परिवर्तन को हिजरत का अनुभव बना कर पूरे रवैय्ये को 'इजाबी' बना दिया। यही उनकी कला और चिंतन की उपलब्धि है और पहचान भी।

वह पाकिस्तान में रह कर हिन्दुस्तान के वृक्षों, पक्षियों, गली गूचों, कचरों

1. एक चादर मैली सी, पृ०-29

2. वही, पृ०-1

और अन्य दृश्यों को बड़ी तीव्रता से महसूस करते हैं। इसीलिए वह पाश्चात्य प्रभाव से सुरक्षित रहे। और उन्होंने अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्राचीन साहित्य, धार्मिक ग्रन्थों, दास्तानों हिन्दुस्तान के बुजुर्गों की शिक्षा उपदेश और जातक कथाओं से रखा। इन्हीं के प्रसंग से वह नवीन समाज पर पाकिस्तान की स्थिति पर टिप्पणों भी करते हैं और उसको आलोचना को।

"बस्ती" एक ऐसा उपन्यास है जिसके इन्तेज़ार हुसैन ने व्यर्थ के वर्णन की अपेक्षा आवश्यक शब्दों और वाक्यों का ही प्रयोग किया है। इसीलिए आलोचकों ने इसे विस्तृत अफ़साना या अफ़सानों {कथाओं} का समूह कहा है क्योंकि उपन्यासकार जान-बूझकर ग़ैर जरूरी वर्णन से दूर रहता है। इन्तेज़ार हुसैन स्वयं लिखते हैं, "सबसे ज्यादा इस ख्याल से डरता हूँ कि कहीं यह न हो कि बात पूरी हो जाये और ब्यान जारी रहे मुझे फैलाने से ज्यादा समेटने की फ़िक्र रहती है। शायद इसीलिए मैं ज़ख़ीन नाविल नहीं लिख सकता।"¹

उनके इस रवैये और स्वीकारोक्ति के बाद इस सन्देह को विश्वास में परिवर्तित करने के लिए बहाना मिल गया कि इस उपन्यास में अफ़सानानिगारी की गयी है या यह अफ़सानों का संग्रह है। इसकी औपन्यासिकता पर सन्देह शायद "लहू के फूल" अलीपुर का एली या कुछ और महत्वपूर्ण उपन्यासों की उपस्थिति और उनकी विषाद परम्परा के कारण हुआ जहाँ सामाजिक, राजनीतिक या यौन-वर्णन विस्तार के साथ प्राप्य है वहीं दूसरी ओर इन्तेज़ार हुसैन की समास-वृत्ति से आलोचक को सन्तुष्टि नहीं होती। इन्तेज़ार हुसैन प्रतीकों, रूपकों या बैनसनुतरी कार्याविधि प्रयुक्त करके कम से कम समय में अधिक बात कहने के सलीके और चेतना के साथ अपने महसूसों का संक्षेपण क्यों करता है यह प्रश्न भी उनकी आलोचना का आधार है।

इस उपन्यास में हमसे और हमसे कुछ पहले के युवा को पीड़ा और संशय भी मुखरित हो उठा है और पाठक पाकिस्तान की राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक स्थिति, विभाजन, शरणार्थियों की बेबसी, सिकन्दर मिर्जा के पतन, अय्यूब सरकार के शोषण युद्ध, बंगलादेश का अस्तित्व आदि से सन्दर्भ से सांस्कृतिक त्रासदी

से दो चार होता है । इस राजनैतिक अस्थिरता और शोषण और शासन व्यवस्था से जो घेतना जन्म लेती है इसका §बैनुस्सुरा § में और कहीं प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति मिल जाती है । वह मानवीय रिश्तों, वफादारियों और मानव मनोविज्ञान को राजनीतिक परिदृश्य में देखते हैं और इन बाह्य परिस्थितियों को आन्तरिक भाव-बोध से जोड़कर शोषण अनाचार, अन्याय और इस संक्रास को ओर संकेत करते हैं जो पाकिस्तानी समाज में फैला हुआ था ।

"बस्ती" के प्रारम्भिक 50 पृष्ठों की साधारणतया प्रशंसा की गई है हालांकि यह पृष्ठ तो मात्र भूमिका हैं उन परिस्थितियों को समझने की जो इन्तेज़ार हुसैन आगे प्रस्तुत करना चाहते हैं । दुनिया का मैला न होना, काबिल के द्वारा हाबील की हत्या यह सब भी एक प्रकार से भूमिका के उपकरण हैं । पाकिस्तान की इन परिस्थितियों में जिनको वह प्रस्तुत कर रहे हैं वहां अतीत की स्मृति पाकिस्तान के वर्तमान से संयुक्त होकर एक नये शहर की संरचना कर जाती है । इस नये शहर का संक्रास दिखाना ही इन्तेज़ार हुसैन का कथ्य रहा है ।

"मैं इस शहर के लिये ज़ोर कुछ नहीं कर सकता हुआ कर सकता हूँ । यह मेरे तस्सतुर में आबाद रूप नगर के लिए भी हुआ है कि मैं इसे अब इस शहर से अलग तस्सतुर में नहीं ला सका । रूपनगर और ये शहर मेरे अन्दर घुल-मिलकर एक बस्ती बन गये ।"¹

स्मृतियाँ इन्तेज़ार हुसैन की कला का आधार हैं । वर्तमान से असंतुष्ट और भविष्य से निराशा पाकिस्तान के महाजरीन का समष्टिगत रहसास है जिसमें इन्तेज़ार हुसैन भी शामिल हैं । वह वर्तमान से असंतुष्ट होकर उससे पलायन चाहते हैं । इसलिए उन्होंने अतीत के विरसे को ओर पग बढ़ाए हैं जहाँ उनके असंतुष्ट का परिवेश नहीं था । मूल्यों का §मराजअत§ वह अवमूल्यन भी नहीं था जो आज के युग की विशिष्टता है आज की इस अर्थहीनता और संवर्धित संसार से वह इतने बददिल होते हैं कि विद्रोह और संघर्ष के स्थान पर उन्होंने अतीत पूजा का आश्रय ग्रहण किया है और फिर वह पाकिस्तान के सांस्कृतिक परिवेश से उकता कर डिबाई के गली कुँयों दरख्तों और व्यापारियों

के संकोचहीन सम्बन्धों को याद करने लगते हैं । इसीलिए जब भी पाकिस्तान में राजनीतिक परिवर्तन होता वह समय इन्तेज़ार हुसैन के लिए यादों की वापसी का मौसम बन जाता । रूपनगर, साबरा व्यासपुर और उससे सम्बद्ध न जाने कितनी स्मृतियों जाग्रत हो गयीं और इन्तेज़ार हुसैन सभ्यता के इतिहास को दोहराने में लग गये । इन नये अनुभवों की अभिव्यक्ति और स्मृतियों की तकरार में अनरंगता अस्थापित हो गयी । उनके पात्र भी इस अमल में शरीक हैं ।

ज़ाकिर उसके अब्बा और अम्मा जी भी ऐसा ही करते हैं । साबरा जैसी शान्ति प्रिय लड़की स्मृतियों के जंगल में फँस जाती है । ज़ाकिर को उसका अतीत, प्रेम, मित्र, उसके पिता को खिलाफ़त के लीडर रूपनगर और व्यासपुर का सम्पूर्ण परिवेश याद आ जाता है । साबरा पीड़ा की तलीब कन्धों पर लटकाए दरबदर फिर रही है । उसके माता-पिता टाके में हैं और वह सुरेन्द्र के पास आकर नियमित रूप से धैर्य के साथ परिस्थितियों का ज्ञान रखने के लिए अखबार देखा करती है और एक बार जब सुरेन्द्र ज़ाकिर का वर्णन करता है तो इतने समय के बाद भी वह उसका नाम सुनकर रोने लगती है जैसे एक बार फिर उसको मजनू की मृत्यु याद आ गयी हो । वह केवल रोती है न तो ज़ाकिर का नाम लेती है और न ही कुछ जानने की इच्छा की अभिव्यक्ति करती है । वह उदास होकर यादों का एक हिस्सा या लैंडस्केप बन गयी परन्तु वह अपने एकाकीपन या उदासी का दोष हिन्दुस्तान या पाकिस्तान के विभाजन को नहीं देती । उसके निकट यह कोई विशेष कारण भी नहीं है वह कहती है कि "मैं पाकिस्तान भी चली जाती तो क्या फर्क पड़ता वहाँ भी अकेली हो रहती बिल्कुल तन्हा ।"¹

इस भाँति यह सम्पूर्ण चरित्र अतीत के बंदी हैं और वर्तमान की बेरहमी का शिकार हो गये हैं । जागीरदाराना व्यवस्था के ढोले पड़ जाने और वर्तमान की बेरहमी का शिकार हो गये हैं । इनको अपनी नाकदरी का सहना हो चुका था क्योंकि उनमें वर्तमान की समस्याओं का समना करने का साहस और संघर्ष की ऊर्जा नहीं रही थी परिणामस्वरूप वह पलायन करके अतीत के शान्तिपूर्ण झरोखों में तन्तुबिड प्राप्त करने लगे । साबरा एक युग तक शान्त रही

ज़ाकिर ने सुरेन्द्र को या सुरेन्द्र ने ज़ाकिर को याद नहीं किया परन्तु युद्ध की भयावह विभिन्निका उनके अतीत के दरौबे खोल देती है और फिर विपत्ति के समय भयभीत होकर स्वयं को दोहराने लगते हैं और यह कार्य पूरी नस्ल की तबाही तक जारी रहा। हालात की संगीनी को ही इन्तेज़ार हुसैन यादों की वापसी का मौसम कहते हैं। यह हमारी यादों का मौसम है। न जाने कब-कब की भूली बिसरी बातें याद आती हैं इस वक्त जबकि चारों तरफ इतना हंगामा है।”¹

वर्तमान से निर्लिप्तता इतनी बढ़ी कि अजमल, अफ़ज़ाल और सलामत अपने पिता को ही अस्वीकार करने लगे “मगर मेरा बाप मेरा नहीं” सलामत ने दाँत कियकिचाते हुए कहा--“मैं हरामजादा हूँ। अजमल ने एलान किया “मैं अपने बाप को अपना बाप मानने से इन्कारो हूँ। यार हमारे मकरू बापों ने हमें बर्बाद कर डाला। सलामत की आवाज़ में एकाएक रिक्त पैदा हो गयी।”²

वर्तमान की भयावहता की यह स्वीकारोक्ति उनको अतीत की ओर ले जाता है जो पलायनवादियों का आश्रयदाता है जहाँ इन्तेज़ार हुसैन इतिहास और कबरों का आश्रय लेते हैं वहाँ उनके द्वारा सभ्यता की शिनाख्त होती है-- “मैं अपनी तारीख से भागा हुआ हूँ और ज़माने हाल में साँस ले रहा हूँ। फरारियत् पसंद मगर बेरहम हाल हमें फिर तारीख की तरफ ढकेल देता है।”³

परिस्थितियों के वैषम्य को अभिव्यक्ति हेतु इन्तेज़ार हुसैन ने कई रूपक खोजे हैं। सफ़ेद सर वाला बुढ़ा और कबर वगैरह रूपक हैं। कबर थकावन, नैराश्रय, असन्तुष्टि और नकारात्मक रवैये की उच्चतम स्थिति है।

वह स्वभाव के विशिष्ट स्वरूप और चिंतन के स्तर की अभिव्यक्ति करता है और युग के संक्रास की शिकायत करता है।

हिजरत का इतना तीव्र सहेसास और पलायन को पवित्र बनाने का कार्य या बहाना भी इसी चिंतन और सहेसास की उपज है जो विवशता, पिच्छियता

1. बस्ती, पृ०-52

2. बस्ती, पृ०-55

3. बस्ती, पृ०-75

की स्थिति से जन्म लेता है और इन्तेजार हुसैन इन स्थितियों में आज पलायन करते हैं इस उपन्यास में यह अनुभव सर्वप्रथम जाकिर के पिता ने किया था जब वह रूपनगर में बिजली के खम्भों की उपस्थिति और मस्जिद में बिजली लग जाने की बिदात और मुहर्रम के अवसर पर ढोल बजाने को रोकने की कोशिश करके नाकाम और विवश होकर व्यासपुर की ओर चले गये थे। वर्तमान में उसकी सभ्यता और उपादानों से पलायन का यह पहला कदम था। इस सहेतास और कमजोर चिंतन ने आज स्वप्नों और बशासतों पर ही जाना सिखा दिया।

इन्तेजार हुसैन ने इस प्रकृति पर चोट लगायी है और पाकिस्तानी व्यवस्था के शोषण तंत्र पर रूपकीय कथानक में कुठाराघात किया है। उन्होंने अलिखित लैलवी अंदाज की कई कहानियाँ सुना कर अपने देश और युग के शोषण तंत्र की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की है। यह रवैया एक प्रकार से इन्तेजार हुसैन की विवशता भी थी।

पाकिस्तान में जब के वातावरण और सरकार की सख्त निगरानी के फलस्वरूप प्रत्यक्ष रूप से उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखा जा सकता इसीलिये प्रतीकात्मक अंदाज अपनाया गया। शीराज होटल जो राजनीतिक चर्चाओं का केंद्र बिन्दु था एक समय में वहाँ यह तखती लगी नजर आती है यहाँ बराहे करम सियासी गुफ्तगू न कीजिए। इस तरह के संकेतों से दमन की स्थिति का संकेत मिलता है। इस काले वातावरण में लोग स्वयं को अन्दर से बाहर तक बदल रहे हैं। वफादारियाँ परिवर्तित हो रही हैं। सोशलिज्म के उपदेशक मुसलमानों की बात करने लगे और यह परिवर्तन इन्तेजार हुसैन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का चरमोत्कर्ष है।

इन्तेजार हुसैन ने चाभियों के खो जाने पर और फिर उनके मिल जाने की भी बतौर रूपक प्रयोग किया है। यह चाभियाँ जिनको वह भूल गये थे मिलने के बाद एक इतिहास, एक युग और एक पूरा विरसा मिल गया। यह सब कुछ वह जाकिर को सौंप देते हैं। यह जातीय परंपरा की ओर एक संकेत हो सकता है अगर वह मृत्यु के पूर्व ऐसा करते तो परंपरा टूट जाती।

"आज के आशोब में हमारी मुलाकात कबरों के दरम्यान में तो भूल ही गया था। चोंक कर झपट उठर देखा कबरें ही कबरें।"¹
इन्तेजार हुसैन जिस व्यथा से पीड़ित है उनसे मोक्ष की स्थिति मृत्यु है या स्वप्न और भविष्यवाणियां वह तर्क भविष्यवाणियों का आश्रय लेते हैं क्योंकि वह पाकिस्तान को बर्बाद होता हुआ नहीं देख सकते। इसीलिए भविष्यवाणी का सुरक्षित मार्ग दृढ़ निकालते हैं।

✓ ऑगन - खदीजा मस्तूर - 1962

खदीजा मस्तूर ने इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय परिवार के तन्दर्भ में तम्पूर्ण मुस्लिम समाज, स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों और विभिन्न परिवारों की त्रासदी को जीवन्त रूप प्रदान किया है।

तम्पूर्ण उपन्यास का केन्द्र एक मुस्लिम परिवार है जिसमें विभिन्न चिन्तन और विचारों के व्यक्ति हैं। पुराने लोग कमिती हैं और आलिया की अम्मा अंग्रेजों की पक्षधर। इस भाँति इस ऑगन में पर्याप्त चहल पहल नारेबाजी और एक दूसरे पर व्यंग का वातावरण रहता है।

उपन्यास का एक बड़ा अंश स्वतन्त्रता पूर्ण के जीवन पर आधारित है। एक तम्पूर्ण परिवार स्वतन्त्रता के तंघर्ष में रत है। यद्यपि परिवार पतन की ओर अग्रसर है परन्तु फिर भी इसके अधिकांश सदस्य पारिवारिक प्रथाओं और मूल्यों को तीने से लगाये हैं। इस परिवार के दो सदस्यों ने स्वतन्त्रता के लिए तंघर्ष किया और मृत्यु को प्राप्त हुए। शेष व्यक्ति स्वतन्त्रता के पश्चात् पाकिस्तान चले गये।

यह कथा कितनी भी परिवार की हो सकती है जो जागीरदाराना परम्परायें रखता हो। परन्तु महायुद्ध के पश्चात् इस परिवार का पतन होने लगा और यह लोक स्वतन्त्रता की प्रतीक्षा में जीने लगे। उपन्यास के प्रारम्भिक अंश में आलिया की स्मृति के पर्दे पर उसके परिवार का अतीत दृष्टिगत होता है-
"माजी की यादें हर तरफ से द्वाँती चली आ रही थी। लोग कहते हैं कि माजी को भूल जाओ। पीछे मुड़कर देखने से क्या रहा है आगे बढ़ जाओ वर उते

तो ^{क्रिनि}विस्ते में तिर्क अपना माजी ही मिला था । माजी बितते उतने कुछ नहीं तोखा । अब वह इतने किस तरह दामन बचाये ।¹

इस भाँति आलिया इस कथा की त्रधार है । उसके पिता मन्नादिर मियाँ एक अंग्रेज का तर फाड़ने के अपराध में जेल चले जाते हैं और उनका पूरा परिवार आर्थिक समस्याओं का शिकार बन जाता है । आलिया के पिता का जेल में देहान्त हो जाता है और आलिया का उत्तरदायित्व बड़े लला पर आ जाता है वह परिवार का संरक्षण करते हैं । आलिया की माँ आलिया के साथ स्वतन्त्रता के पश्चात् पाकिस्तान चली जाती है जहाँ उनको एक भव्य कोठी, साज व सामान के साथ मिल जाती है । वहाँ अचानक एक दिन शकील पुलिस के डर से भागता दौड़ता आ जाता है । आलिया उसे पहचान कर खूब सत्कार करती है मगर उसकी माँ उसे सहन नहीं कर पाती और वह चला जाता है । उसकी बहन का प्रेमी सफ़्दर भी एक दिन आता है और आलिया से उसकी बहन की तलाश करता है । आलिया भी उससे विवाह पर तैयार हो जाती है मगर उसकी माँ को यह स्वीकार नहीं होता । इस भाँति यह कथा परम्परागत रूप में समाप्त हो जाती है ।

खदीजा मस्तूर का यह उपन्यास एक सीधा-साधा उपन्यास है जिसमें किसी भी भाँति की पेचीदगी है और न ही उल्काव, प्रत्युत एक कथा है जो विभिन्न आयामों से गुजरती हुई अपने अन्त को प्राप्त कर लेती है । अन्तर्कथाओं का संघटन भी मुख्य कथा से ही हो जाता है जो इसे एक महत्वपूर्ण उपन्यास बना देता है ।

"खदीजा मस्तूर" की विशिष्टता इस उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण है । उन्होंने उपन्यास को अपने राजनीतिक दृष्टिकोणों से बोझिल नहीं किया है और एक समानान्तर मार्ग खोज निकाला है । विशेषरूप से "इसरार मियाँ" और "बुआ" के चरित्रों ने उपन्यास को सजीव बना दिया है । "शकील"

का चरित्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उसके द्वारा सामाजिक विकृतियों की ओर संकेत होता है।

बड़ी मालकिन एक पारम्परिक चरित्र है जिसका सम्पूर्ण परिवार पर तीव्र प्रभाव है। उन्होंने युग के उतार चढ़ाव देखे हैं। वस्तुतः "करीमन बुआ" के शरीर के दाम उस शोषण के प्रतीक हैं जो उच्चवर्गीय व्यक्ति दूसरे वर्ग के व्यक्तियों का करते हैं। एक महत्वपूर्ण पात्र स्वयं "आलिया" है जो उपन्यास की सूत्रधार भी है। मजाहिर मियाँ की लड़की अलोगद की मेजुस्ट मगर अत्यन्त सीधी। परन्तु अन्त में जब सफ्दर वापस आता है तो वह उसे बड़े साहस के साथ स्वीकार करती है और माँ से भी विद्रोह पर उतार हो जाती है -- "यह नहीं जायेगे अम्मा मैंने फैसला कर लिया है कि यह हमेशा मेरे पास रहेगे। हम दोनों को आप एक कर दीजिए।"¹

आलिया ने प्रेम करने और धर्म धारणा करने की वह सम्पूर्ण विशेषताएँ थीं जो एक मध्यवर्गीय परिवार की लड़की में हुआ करती हैं वह अन्दर ही अन्दर घुटती है समाज के दोहरे रवैये को देखकर। वह इसरार मियाँ के साथ किये जाने वाले व्यवहार पर भी क्रुद्धती है। वह संसार के युद्धों पर भी दुखी होती लेकिन उसकी शराफत वहाँ पूर्ण होती है जहाँ उसको इस बात का बोध होता है कि "सफ्दर" वह नहीं रहे जिसको तहागीना पसंद करती थी और जिसके बिना उसने स्वयं विद्रोह कर देना चाहा था। तब वह विवाह से इन्कार कर देती है। तब सफ्दर कहता है--"दुनियां तबाह होती है तो हो जाये, मुझे कोई मतलब नहीं। दौलत कमाऊंगा और ऐश कर्लूंगा।"² तो वह यह सुनकर चौंक पड़ती है और कहती है--"अरे बस आप की जिन्दगी का यही मकसद रह गया है बस इतनी सी बात।"³

1. खदीजा मस्तूर, अँगन पृ0301

2. वही पृ0306

3. वही पृ0306

/सम्पूर्ण उपन्यास में स्त्री पात्रों का आधिक्य है और वह आत्मीय सजीव भी है। पुरुष चरित्रों में मात्र इतरार मियाँ का चरित्र दुर्बलता के पश्चात् भी महत्त्वपूर्ण बनकर उभरा है। वह बड़े साहब की नाजायज सन्तान थे मगर सभी उनको ठुकराते थे। मात्र आलिया के हृदय में कुछ सहानुभूति थी। अन्यथा वह हर समय ही धुत्कारे जाते रहते थे। वस्तुतः यह चरित्र एक प्रतीकात्मक चरित्र है जो सब कुछ देख समझ कर शान्ति के साथ सहन कर लेता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् सहमापन और विवशाता उपन्यासों का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण रसैया है जो इस उपन्यास के चरित्र में ढल गया है।

जमील एक रोमानी चरित्र है जो "तहमीना" और "आलिया" दोनों की ओर आकृष्ट होता है और फिर फौज में चला जाता है। बड़े चचा कौम परस्त मुसलमानों के स्मारक है। उन्होंने अपना जीवन स्वतन्त्रता और काग्रेस के लिए अर्पित कर दिया परन्तु उनको एक दंगाई ने मार दिया। उनके प्राणों का मुआवजा मात्र तीन हजार रुपये था। भाग्य की इस विडम्बना को भी उभारा गया है।

वस्तुतः यह उपन्यास मात्र चरित्र-चित्रण के कारण ही महत्त्वपूर्ण है। कथ्य या तकनीक के आधार पर यह सीधा साधा उपन्यास है जिसके कथानक को यादों के सहारे एक सूत्र में पिरोया गया है। विभिन्न स्मृतियों के माध्यम से ही सामाजिक समस्याओं को भी उभारा गया है परन्तु इसकी महत्ता का निर्धारण मात्र इसके चरित्र चित्रण की विशिष्टताओं में ही निहित है। सारे चरित्र जीवन्त ठोस जगत और यथार्थ पर आधृत है इसकी यही विशेषता इसे साप्तेत्र उपन्यासों ने महत्त्वपूर्ण बना दिया है।

उदास ^{नरसिंह} ~~अमर~~ - अब्दुल्ला हुसैन 1963

ऐतिहासिक सभ्यता और मानव मनोविज्ञान के उछा-पोह के तन्दर्भ में अब्दुल्ला हुसैन ने इस उपन्यास में जीवन की कुछ वास्तविकताओं, मानवीय जीवन और चिन्तन पर इतिहास के निरन्तर दबाव और गहरे प्रभाव के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं और रहसात बोध को उभारा है।

इस उपन्यास का समस्त परिवेश एक विशिष्ट उदासीनता से आबद्ध है और प्रत्येक पात्र को बूढ़े होने या अपने जीवन के व्यर्थ हो जाने का बोध अन्ततः अत्यन्त तीव्रता से होता है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व जो नयी और किसी सीमा तक प्राचीन पीढ़ी की भी त्रासदी है उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। कई महत्वपूर्ण पात्र दोराहे पर खड़े दृष्टिगत होते हैं।

अब्दुल्ला हुसैन ने आंशिक सामाजिक सांस्कृतिक और आंशिक ऐतिहासिक कथा की सर्जना की है। इसीलिए अंग्रेजों से वफादारी, विरोध और कुछ सम्झौतावादी दृष्टिकोण भी सामने आया है। "रौशनपुर" के परिवार को अंग्रेजों ने जो जागीर प्रदान की, उसकी पृष्ठभूमि और ब्यान का अंदाज पूर्ण पारम्परिक और नज़ीर अहमद के "इब्नुलवक्त" का सा है। जागीर प्राप्ति के पश्चात् यह परिवार उच्च सभ्यता, संस्कृति और अंग्रेजी प्रथाओं का प्रतीक बन जाता है। यहीं से उस अन्तर्द्वन्द्व का भी प्रारम्भ होता है जिसकी अभिव्यक्ति में उपन्यास की कलात्मक उच्चता का रहस्य निहित है।

उपन्यास में इस परिवार के समानान्तर एक और परिवार की कथा भी चलती है जिसका केन्द्र "नईम" है। इन दोनों परिवारों के मध्य श्रेष्ठ सम्बन्ध थे। 1918 में "रौशन आगा" की उपाधि से सम्मानित किये जाने की प्रसन्नता में एक समारोह के आयोजन से इस कथा का बाकायदागी से प्रारम्भ हुआ जिसे "अब्दुल्ला हुसैन" ने "प्रेम कहानी" कहा। मगर पाठक को इस कथा में प्रेम करने वाले व्यक्तियों और उनके माध्यम से उस युग के पूरे स्नानात और प्रवृत्तियों की शिनाख्त करने की सुविधा प्राप्त हो गयी और उपन्यास का स्तर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के परिणामस्वरूप प्रेम की साधारण भावना के स्तर से बहुत उच्च हो गया। अस्तूब अहमद अंतारी² के अतिरिक्त अनेक अन्य आलोचकों ने

1. सवेरा अंक 25 वॉ, पृ० 13

2. गुफ्तगू : अंक 11, 1980 पृ० 160

इसे अनेक पीढ़ियों की त्रासदी कहा है। यह गलतफहमी संभवतः "उदास नस्ले" के नाम से होती है। इस उपन्यास में "नईम" और उसकी नस्ल के लोगों की जो समस्याएं हैं और उनके पूर्व की पीढ़ी की जो समस्याएँ थीं वह पीढ़ियों के अन्तर में विशेष महत्व नहीं रखती। "कुर्तुल ऐन हैदर" के यहाँ तो मात्र दो-तीन पीढ़ियों की ही समस्या नहीं प्रत्युत एक विस्तृत युग है। "काज़ी अब्दुस्तत्तार" के "शब गज़ीदह" में भी पीढ़ियों के अन्तराल को तलाशा जा सकता है। यहाँ तक कि "उवाजा अहमद अब्बास" के "इन्क्लाब" तक में "अन्वर" और उसके पिता के माध्यम से कम से कम दो पीढ़ियों का मिज़ाज और उनकी त्रासदी समुच्च आती है। स्पष्ट है कि पीढ़ियों का अन्तर ही इसकी विशिष्टता नहीं है और न सिर्फ इसके कारण ही यह उपन्यास महत्वपूर्ण बना।

इसका महत्व अब्दुल्ला हुसैन के बयान, उस युग के समष्टिगत रहसात और पात्रों के अन्तस् की अभिव्यक्ति के कारण से है। "नईम" के पात्र की महानता तो उसकी शायगी में ही है। उसने ग्रामीण जीवन पसन्द किया। देशभक्ति के फलस्वरूप जेल गया और फिर इसका तीखा परिणाम देखता हुआ गुमशुदगी की नज़र हो गया। वह जीवन भर एक अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त रहा। उसने अगर प्रेम किया तो घृणा पाई और नफरत की तो प्रेम का प्रसाद पाया। यह अन्तर्विरोध "नईम" के युग का विशिष्ट अन्तर्विरोध है। उसका यह रहसात युद्ध के भयावह दृश्यों से और विभिन्न वस्तुओं में निहित अन्तर्विरोधों से और भी तीव्र हो गया था जिसने उसके पूर्ण व्यक्तित्व को कण-कण में बिखेर दिया। इसीलिए वह उपन्यास के प्रारम्भ से और विशेषरूप से युद्ध के पश्चात् बिखरा-बिखरा, उजड़ा-उजड़ा और बेज़ार सा नज़र आता है। जब उसने युद्ध में मानव जाति का विध्वंस और मूल्यों का विनाश देखा तो वह अन्दर से टूट गया और फिर उस पर इसका प्रभाव अन्त तक बना रहा और वापिसी पर उसका यह विचार जोर पकड़ गया कि शक्तिशाली दुर्बल को और बड़े छोटे को खा जाते हैं। यह रहसात इस उपन्यास के एक बहुत बड़े भाग पर हावी है और स्थान-स्थान पर इसके संकेत मिलते हैं।

अब्दुल्ला हुसैन शक्ति सन्तुलन के अभाव को भी अत्यन्त तीव्रता के साथ उभारते हैं— "कैसा जमाना आ गया है। सर्पों और सुअरों के बच्चे इन्सानों के घर पैदा होने लगे हैं। ऐसा कभी सुना था। जिन्दा मछली को जिन्दा आदमी खाता है।। एक जिन्दगी दूसरी जिन्दगी को।।।"¹

स्वतन्त्रता के पश्चात् अपहरण, कत्ल और बलात्कार के जो भयावह दृश्य सामने आये उन्होंने बहुत से उपन्यासकारों को प्रभावित किया। अब्दुल्ला हुसैन ने इस सिलसिले को जलियां वाले बाग और पवित्र युद्ध से सम्बद्ध कर दिया और इसके परिदृश्य में मानवीय जान माल और मूल्यों के विनाश के दृश्य दिखाये और फिर अब्दुल्ला हुसैन ने अपने युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया— "तुम हिन्दू हो या मुसलमान" "नईम" ने जल्दी से तत्काल किया "आह हा.... यह अच्छा तवाल है" यह उँगली उठाकर हँसा "यह अच्छा तवाल है, वाकई लेकिन मुझे पता नहीं"।²

युद्ध से लौटने के पश्चात् नईम ने राजनीति में रुचि लेना प्रारम्भ किया और विभिन्न घटनाओं का साक्षी बनता हुआ परिस्थितियों से जूझता रहा। उस पर फातिम का आक्रमण हुआ तो "अज़रा" उसे दिल्ली ले गयी जहाँ डा० अन्तारी ने चेक अप के मध्य उससे पूछा— "तुम्हें मजहब पर यकीन है।" और कहा — "तुम्हारे दिमाग पर तुम्हारी सोच का बोझ है जो तुम्हें खत्म कर रहा है और तुम्हारे दिल में कसक है जो नुकसाने अज़ीम के सहसात् से पैदा हुआ है। इस तरह तुम ज्यादा दूर तक नहीं जा सकते।"³

इस उपन्यास में तृप्ति की समस्त समस्याओं का यही इलाज मिलता है कि मानव भूत, भविष्य से परे हो जाये क्योंकि यह दोनों ही अपना अस्तित्व नहीं रखते" यह तम्हा जितमें हम जिन्दा हैं और इससे हम तसकीन हासिल करते हैं और मुकम्मिल आजादी से जिन्दा रहते हैं। मुस्तकबिल {भविष्य} इस्ताफ

1. उदास नस्लें पृ० 263

2. वही 266

3. वही 371

फायदा, नुकसान यह सब एक तवील {विस्तृत} इन्तेज़ार में शामिल है.....
अहमक और नाकारा बना देता है। जब कोई इन्तेज़ार नहीं रहता कोई
शिकस्त भी नहीं रहती कोई भी नहीं¹। एक अन्य स्थल पर नईम कहता है—
“जानते हो हमने बुदा को क्यों ईजाद किया है। अपने आराम की खातिर”
क्योंकि हम सोचना नहीं चाहते।²

इस उपन्यास के पात्र जीवन के विषय में विभिन्न कोणों से सोचते
हैं और मानव की विषमता और असहाय स्थिति पर अपने विचार व्यक्त करते हैं
कि वह कितना विषम मजबूर, दुर्बल और असहाय है। इस तरह वह जीवन के
दर्शन, दुख की वास्तविकता, उसके कारणों और उपादानों का दार्शनिक अंदाज
से पता लगाते हैं और फिर थकावट का शिकार हो जाते हैं। इस अनुभव में
विभिन्न स्थितियों एक ही संक्रांत के विभिन्न पहलुओं के रूप में उभरती है
“नईम” “अजरा” “बिलकीस” “खालिद” “मसूद” सबमें एकरसता थी। इन
सबकी दृष्टि में जीवन मूल्यहीन हो गया था। सर्वत्र अन्याय, दुख और मूल्य-
हीनता का बोध फैला हुआ था। भूत और भविष्य सभी व्यर्थ था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश का विभाजन हुआ और फिर पूरे कारवाँ ने
यात्रा की तैयारियाँ कीं और विभिन्न समस्याओं का सामना करता आगे बढ़ता
रहा। यहाँ विभिन्न पात्रों के द्वारा “अब्दुल्ला हुसैन” ने पुनः जीवन की
दार्शनिक समस्याओं की ओर इंगित किया इस उपन्यास के अधिकतर पात्र तबाही
की नज़र हो गये और अपने जीवन के इस प्रकार व्यर्थ हो जाने पर पछताते रहे।
अब्दुल्ला हुसैन ने उपन्यास में स्थान-स्थान पर पूरे परिवेश में समष्टिरूपेण इस
रहसात को उजागर किया है। यही वह रहसात है जिसमें “कुस्तुलयेन हैदर”
और “अब्दुल्ला हुसैन” किसी कदर समीप दृष्टिगत होते हैं। हैदर की भाँति
हुसैन के पात्र भी विलुप्त होते रहे हैं। “नईम” जीवन को विभिन्न दृष्टिकोणों
से देखने और समझने के पश्चात् समन्वय और सम्मति के लिये प्रस्तुत हो जाता है

1. उदास नस्लें पृष्ठ 335

2. वही 331

और वह भी अपने बूढ़े हो जाने पर दुःख प्रकट करता है। "अजरा" जिसने पाकिस्तान में नया रूप प्राप्त कर लिया है, "शहला" जो "बानो" बन गयी है, इनके चरित्रों में भी नईम की प्रतिध्वनि दृष्टिगत होती है।

इस उपन्यास में पात्र अपना पृथक् अस्तित्व तो रखते हैं परन्तु उनके सहसास में एकत्व है। वह चिन्तन को एक लानत सम्झते हैं। संसार में जो संत्रास और दुःख हैं इसका एक बड़ा कारण चिन्ता है और यदि मानव सहसास को समाप्त कर दे तो फिर उसे कोई चिन्ता नहीं सता सकती—"तोच हमें खत्म कर देती है"। अब्दुल्ला हुसैन की दृष्टि में अतीत और भविष्य दोनों व्यर्थ हैं। मात्र वर्तमान से ही मानव को वास्ता रहता है। वह सुन्दर भविष्य की आकांक्षा करेगा तो उसके स्वप्न टूटने भी और परिणामस्वरूप दुःख की उत्पत्ति होगी। इसी भाँति अतीत को स्मृति में रखने पर भी एक बड़ी अपूर्व बात यह है कि अतीत और भविष्य से इन्कार और अस्वीकृति पर बल दिया गया है परन्तु अतीत का सहसास जिस तीव्रता के साथ उपन्यास पर हावी है वह इसके अनिवार्य होने के संकेत के साथ ही उपन्यासकार के दोहरे रवये की ओर भी इंगित करता है।

इस उपन्यास में पात्रों की उदासीनता और लापरवाही इतना बड़ा समष्टिगत सहसास है जो पूरे औपन्यासिक केनवस पर छाया हुआ है। यह एक ऐसा मूल्य है जो इस युग की आवश्यकता भी है और अस्तित्ववाद का संकेत भी। इसी कारण यहाँ ऐसे सम्बन्धों का संकेत मिलता है जिसमें असम्बद्धता आधार रही है।

फ्लैश बैक की टेक्नीक में लिखा गया यह उपन्यास अतीत की झलकियाँ कुछ इस रूप में प्रस्तुत करता है कि अन्त में वह एक पूर्ण और स्पष्ट चित्र बनकर उभरता है और पाठक बार-बार कल्पना, स्वप्न और चिन्तन के स्तर पर जाकर शून्य को भर लेता है और इस भाँति उपन्यास में एक भीतरी सम्बद्धता उत्पन्न हो जाती है।

भाषा में भी अब्दुल्ला हुसैन ने कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं और उन नवीन उपमाओं, रूपकों एवं शब्दों का प्रयोग किया है जो पहले कम या न होने के बराबर प्रयुक्त होते थे। भाषा उनके यहाँ मात्र माध्यम नहीं है अपितु शब्द अपने पूर्ण और गम्भीर सर्जनात्मक अर्थ रखते हैं।

उपन्यास का फलक 1923 से 1947 तक फैला हुआ है और इसमें इस युग के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को ही अपनी परिधि में नहीं लिया गया है प्रत्युत मौलम और वातावरण पर भी अपनी दृष्टि रखी गयी है। उपन्यास में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि मानव का परिवेश और वातावरण ही उसकी उदासी का कारण बनता है। वातावरण का बिखराव और बेचेनी एक बिखरे मानव का निर्माण करता है और परिणाम स्वरूप सही और गलत के मध्य निर्णय ले सकने की विवेक शक्ति समाप्त हो जाती है। मानसिक शान्ति का क्षरण पूरी नस्ल और पीढ़ी की उदासी का कारण बन जाता है। लेखक ने स्वतन्त्रता को परतन्त्रता पर मुहब्बत अमन और बन्धुत्व को जंग और घृणा के कुचक्रों पर प्रमुक्तता दी है।

इस भाँति यह उपन्यास सन् साठ के पश्चात् के उपन्यासों में तकनीक, विषय और अभिव्यक्ति के नये मापदण्ड बनाता हुआ उर्दू उपन्यास साहित्य में उपन्यास का मूल्य और महत्त्व निर्धारित करता है।

लहू के फूल——हयातुल्ला अंतारी—1970

“हयातुल्ला अंतारी” उर्दू साहित्यिक क्षितिज पर उभरने वाले महत्वपूर्ण साहित्यकार हैं। उनका उपन्यास “लहू के फूल” स्वतन्त्रता के पश्चात् लिखे जाने वाले उपन्यासों के मध्य अपने विस्तृत आकार और राजनीतिक फलक के कारण विशिष्टता का अधिकारी है। यद्यपि सम्पूर्ण उपन्यास में किसी विशिष्ट तकनीक या शिल्प की शिनाख्त संभव नहीं है और न ही विषय की दृष्टि से ही कोई नवीनता दृष्टिगत होती है तथापि विषय की कल्पना और इसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तथा उपन्यास के अन्त में “नादिरा” की कथा के

संयोजन और उसमें बरते जाने वाले रवैये ने उपन्यास के कलात्मक स्तर को बहुत उच्च कर दिया है। हाँकीकि अपने सीमित फलक और विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण उपन्यासकार अपने काग्रेसी मुसलमान होने के खोल में ही सीमित रहता है और इसीलिए उसमें कलात्मकता चिन्तन एवं तकनीकी उच्चता का बोध भी प्राप्त नहीं होता तथापि विशिष्ट ऐतिहासिक परिवृत्त में राजनैतिक परिस्थितियों सामाजिक उतार चढ़ावों एवं अन्य समस्याओं की जानकारी अवश्य मिलती है। अन्याय अत्याचार अनैतिकता निर्धनता और शोषण के विभिन्न रूप उपन्यास में उभरते हैं और उपन्यासकार शोषित वर्ग के प्रति पाठक सहानुभूति जागृत करने में सफल हो जाता है।

साथ ही साथ "लहू के फूल" में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य, धर्म निरपेक्षता देश का विभाजन और जनसंख्या के परिवर्तन के समय और उसके पश्चात की परिस्थितियों कत्ल, अपहरण, बलात्कार और इस संदर्भ में राजनैतिक शक्तियों की विवशता एवं गाँधी जो की हत्या जैसे वास्तव दृश्य भी दृष्टिगत होते हैं।

इस भाँति यदि उपन्यास के विषय का निर्धारण किया जायेतो वर्गीय संघर्ष के शिकार, समाज के गिरे पड़े अस्तित्वहीन व्यक्ति और स्वतन्त्रता के लिये किया गया उनका संघर्ष ही इस उपन्यास का विषय है। पूरी कथा का केन्द्र बिन्दु यही ब्रूलोग हैं। उनकी सामाजिक और आर्थिक राजनैतिक समस्याएँ एवं शोषण जागृति एवं अस्तित्व को बचाये रखने का प्रयत्न ऐसा रहस्य है जो पूर्ण उपन्यास पर छाया हुआ है। " उपन्यास में आपको बड़े हीरो नहीं मिलेंगे। यह मामूली इन्सानों की कथा है लेकिन यही मामूली इन्सान वह लोग हैं जो लोडरों को बना कर बुलन्दियों तक पहुँचाते हैं। यही वास्तविक हिन्दुस्तान है यही विषय है इस उपन्यास का। "

7 "लहू के फूल" उन सामाजिक परिवर्तनों की पहचान भी कराता है जो गाँवों में हो रहे थे। "बाबू" रहने के लिये शहर चला गया और जब वह वापस

1. भूमिका के अन्तिम पृष्ठ से

आया तब तक वातावरण बदल चुका था। धिलन की प्रथा समाप्त हो चुकी थी और अब लोग बीड़ों पीने लगे थे। इस समाजिक मानसिक परिवर्तन में तीव्रता उस समय आई जब गाँव वाले युद्ध-क्षेत्र से लौटे। उनके पास धन था और विदेशी मानसिकता थी। फलस्वरूप उन्हें गाँव में घुटन होने लगी और वह पूरी जागीरदाराना व्यवस्था के विरुद्ध गाँव वालों को उकसाने लगे। गाँव जहाँ एक चकारिन मात्र इस कारण पीटी जात है कि उसने साड़ी पहनी। पंडित जी महाराज इसको अपने वर्ग के विरुद्ध एक चैलेन्ज या विद्रोह की भावना की अभिव्यक्ति समझते थे परन्तु फोज में जाने के फलस्वरूप गाँव में जो पीटी आ रही थी उसमें वृद्धि होती रही और विषमता के प्रति आक्रोश की ध्वनि तीव्र होने लगी और पिछड़े वर्ग के व्यक्ति को अपनी इज्जत और मायादा को पहचानने लगे। परिणामतः गाँधी जी के समाज सुधार आन्दोलन में गति आयी और वह लोग जो अब तक पशुवत जीवन व्यतीत कर रहे थे अपनी महत्ता और मूल्य से परिचित हो गये।

जातीय भेदभाव और सम्बन्धों को अंतारी साहब ने स्थान-स्थान पर उभारा है। जाति के आधार बना कर किये गये अन्याय के स्पष्ट उदाहरण भी दृष्टव्य है। इसी सन्दर्भ में स्वतन्त्रता के लिए किये जाने वाले संघर्ष के संकेत भी मिल जाते हैं।

देवा के लिए सर्वस्व अर्पण कर देने वालों का एक श्रेष्ठ उदाहरण "राहत रतूल" का है। जिसने असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर पुलिस सेवा त्याग दी और पूरे परिवार को तबाही के कगार पर ला खड़ा किया। उसके जेल चले जाने के पश्चात् उसकी पत्नी "सलमा" और पुत्री "फरीदा" ने जिस धैर्य शराफत एवं पवित्रता के साथ आजोबिका कमाई वह भी दृष्टव्य है। "राहत" स्वतन्त्र होकर भी पत्नी और बच्चों के लिए कुछ न कर सका उसने पत्रकारिता प्रारम्भ की मगर उसके उत्तेजक व्यवहार एवं देवा भक्ति ने उसे घरेलू जीवन की ओर से उदासीन बना दिया।

"राहत रतूल" ने जब गाँधी जी के आन्दोलन में भाग लिया तो उसमें

प्राणा पड़ गये और उसके साथ अन्य भी बहुत से व्यक्ति आदोलन से संबद्ध हो गये । खान बहादुर ने भरी अदालत में अपना खिताब लौटा दिया और अधिकांश मुसलमान सक्रिय हो गये । यद्यपि अनेक बार मुसलमानों के मस्तिष्क में यह प्रश्न उठते थे कि "इस आजादी में मुसलमानों को जो कि अल्पसंख्यक है क्या मिलेगा क्या आज़ाद हिन्दुस्तान का तात्पर्य यह है कि ग़ोरे हाकिमों की जगह हिन्दुस्तानी हाकिम आ जाये या कुछ और भी है ।" परन्तु स्वतन्त्रता एक उद्देश्य थी अतः अन्य वस्तुओं से प्रिय थी । स्वतन्त्रता के पश्चात सब ठीक हो जायेगा । हिन्दू मुस्लिम तनाव भी नष्ट हो जायेगा पर "राहतसूल" के साथ होने वाले व्यवहार और उसकी मृत्यु ने इस विश्वास को ठेस पहुँचाई ।

"हयातुल्ला अंतारी" उपन्यास में अपने अधिकांश राजनीतिक दृष्टिकोणों, धर्मनिरपेक्षता पर विश्वास और राष्ट्रीय मित्राज रखते हुए भी मुसलमानों के साथ जो अन्याय हुआ उनको बड़े स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है ।

यौन इस उपन्यास की एक बड़ी और महत्वपूर्ण सत्यता है और उपन्यास के एक बहुत बड़े अंश पर "रजनी" एवं अन्य स्त्रियों के सन्दर्भ से यौन एवं उसके कारणों पर प्रकाश डाला गया है । यौन के इस अनुभव में आयु, भाषा एवं रंग का भी कोई भेद नहीं है ।

इस उपन्यास में "उष्मा" के अस्तित्व उसकी कथा और प्रतीकात्मक चरित्र ने "लहू के फूल" को एक साधारण उपन्यास होते हुए भी विशिष्टता प्रदान करके भीड़ से प्रथक कर दिया । उसकी अपनी एक कथा है और उसे इस उपन्यास की अ बुनावट में प्रतीकात्मक रूप में संगुफित करके लेखक पाठकों को चिन्तन के नव आयाम प्रदान करने के साथ उसे चौकाने का माध्यम बना देता है । "उष्मा" की कथा और इस विषय कन्या का चरित्र टुकड़ों में विभाजित है जिसको एक करने पर एक पहचाना जाने वाला चित्र बन जाता है और कथा में भी एक तारतम्य आ जाता है और इसके चरित्रों के कई पक्ष उजागर होने के साथ ही साथ उनका सर्वोच्च उद्देश्य भी ज्ञात हो जाता है ।

1. हयातुल्ला अंतारी : लहू के फूल पृ०-1112

"उषा" इस उपन्यास के कथानक से पृथक अपना अस्तित्व नहीं रखती । वह भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के संघर्ष में बराबर की भागीदार है । उसका अस्तित्व प्राचीन समयता एवं हिन्दुस्थानीपरम्परा से विकसित हुआ है । स्थान-स्थान पर उपन्यास में ऐसे संकेत हैं जिनसे ज्ञात होता है कि "उषा" विगुद्ध स्थानी चरित्र होते हुए भी प्रतीक रूप में ऐसा अज्य हिन्दुस्तान है जिसको यदि किसी ने बुरे विचार से फर्का भी कर दिया तो तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा ।

इस उपन्यास का एक अन्य महत्वपूर्ण अंश वह भाग है जहाँ अंसारी साहब ने पाकिस्तान की स्थापना के पश्चात विस्थापितों की विवशता दिखाई है । इसी संदर्भ में युगीन त्रासदी और उससे उत्पन्न अंश भी स्पष्ट हो जाती है । "तरबिया" सर्जन शाफाकत की पुत्री है जो दंगा ग्रस्त व्यक्तियों का प्रतीक बन कर उभरी है । "तरबिया" का आधा चेहरा ऐसा मतलब {वीभत्स} हो गया था कि वह इंसान का चेहरा मालूम ही नहीं होता था । बल्कि ऐसा सड़ा हुआ गोश्त लगता था जिसको सैकड़ों छोटे-छोटे बिजबिजाते हुए कीड़ों ने खा लिया हो । "तरबिया की यह दशा देखकर सर्जन "शाफाकत" भी बदले की बात करने लगते हैं । हर व्यक्ति प्रतिशोध ले रहा था अपना अपने सम्प्रदाय और अपने धर्म के व्यक्तियों का प्रतिशोध ही युगीन जीवन की विडम्बनाय है ।

वस्तुतः उपन्यास में उत्तर प्रदेश के जीवन का सजीव चित्र ऐतिहासिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास 1911 से प्रारम्भ होकर स्वतन्त्रता के विविध आयामों से गुजरता हुआ 1947 के स्वतन्त्रता दिवस और दंगों के हंगामों के साथ गाँधी जी की मृत्यु पर आकर समाप्त हो जाता है । इसको विशेषता इस बात में है कि ऐतिहासिक एवं राजनीतिक घटनाओं के माध्यम से प्रत्येक वर्ग के जीवन की व्याख्या की गयी है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि "लहू के फूल" अत्यधिक बृहद उपन्यास होते हुए भी अपनी समग्रता में साणोतर उपन्यास साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है ।

"स्याह आइने": फारूख खालिद 1977

"फारूख खालिद" ने 1950 में जन्म लिया और 1977 में उन्होंने इस उपन्यास की सर्जना की। इसी कारण इसमें स्वतन्त्र चिन्तन, नूतन समस्याओं एवं नव निर्मित मूल्यों का संकेत मिलता है।

"स्याह आइने" आज़ादी के संघर्ष का जायजा लेता है और न ही उसकी मूल्यहीनता पर पश्चाताप करता है। वह मात्र अपने युग की समस्याओं और रहसासात की ओर इंगित करता है और इसी कारण से वह इन समस्त दुर्घटनाओं की व्यथा से तटस्थ होकर स्वतन्त्रता के पश्चात के जीवन और नये समाज में मानव के रहसासात और स्थानात को आधार बनाता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात के अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासों की भाँति यह इतिहास को आधार नहीं बनाता अतीत की स्मृति भी नहीं आती। वह पलायन को क्षमा भी नहीं प्रशस्त करता। दर्शन की आवश्यकता कभी उसे नहीं है। इसका सम्बन्ध निम्न और मध्यवर्गीय जीवन से है। उसके चरित्र गन्दूरी बस्ती के वासी हैं जिनकी अपनी समस्या है। मनोवैज्ञानिक उलझने हैं और जो स्वयं में खोये हुये हैं। मानव के आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व को "फारूख खालिद" ने "स्याह आइने" में पूर्ण अभिव्यक्ति दी है। "खुदा की बस्ती" और इस उपन्यास में यह मूल्य तो समान है कि यह दोनों उपन्यास समाज की गन्दगी और अपराधी जीवन की परिधि को आधार बनाते हैं परन्तु "स्याह आइने" इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है कि इसमें कलात्मक मूल्यों का ध्यान भी रखा गया है। यद्यपि समाज का इकतरफा चित्र प्रस्तुत करने के इत्जाम से यह उपन्यास भी नहीं बच सका है परन्तु जो कुछ है वह कलात्मकता के स्तर पर पर्याप्त हद तक पूरा उतरता है।

उपन्यास में कथा की पेचीदगी रोमांच एवं भाषा के उतार-चढ़ाव के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण भी बड़ा महत्वपूर्ण है। अधिकांश पात्र हमारे युग के हैं। आज के अतित्ववादी समाज एवं स्वयं से भी भयभीत पैयादी, "बंगीर", अजीत" उसके माँ बाप, अज़रा उसके पिता "कुलसूम" मुजाहीन बहन अंधी बहन और स्वयं सूत्रधार "मुनीर" इत्यादि सभी ऐसे ही पात्र हैं।

"कुलसूम" गूँगी, विवशा एवं परवशा नारी का प्रतीक है। उसके लिए शब्द या ध्वनियाँ कोई अर्थ नहीं रखती। वह अर्थ पागल है, इसी कारण उसको बाँध कर रखा जाता है। उसकी एक बहन मुजाहीन एवं एक बहन अंधी भी है। इस भाँति गूँगापन अंधापन और भुजाओं का न होना, समाज के शोषण अन्याय और नारी की विवशाता का प्रतीक है।

यह तीनों दिलावर खान की पुत्रियाँ हैं। "कुलसूम" को "बशीर" उठा कर ले जाता है। वह इस मेजबान औरत से विवाह करना चाहता है। वह उससे कहता है "तुम बोलती नहीं। तुम बोलती नहीं।। अगर तुम बोल सकती तो तुम पर टूटने वाला जुल्म लोगों की निगाहों के सामने गहरी कसीफ {मन्दी} घुटन कायम कर देता और इस "स्याह आइने" में उन्हें अपने लाचार और तआफुनजदह {बदबू युक्त} इख्वादिशात के वह लाशो {अर्थी} नज़र आते जिनको वह महौल {वातावरण} की अखिर बचाते हुए बेनाम जगहों पर फेंक आये थे। तुम्हारे अन्दर सवालात था बोझ होगा।" कुलसूम आरिफ नवाज की पत्नी है और वह स्वयं "बशीर" को उसके पास भेजता है और जब "बशीर" उसको लेकर गायब हो जाता है तो वह परेशान हो जाता है।

वस्तुतः "आरिफ नवाज" एक यौन ग्रस्त चरित्र है जिसके समीप औरत एक कमीज की भाँति है। "कुलसूम", "अंजरा", "रफ़ात" या कोई और लड़की उसके समीप भोग की उपादान है। नारी से खेलना और उसके नग्न शरीर को देखना ही उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति है। गर्भवती "अंजरा" को जिस पैतरेबाजी के साथ फाँस कर उपचार के लिए घर ले जाकर क्रीम से उसके नग्न पेट की मालिश करते हुए अन्त तक पहुँच जाता है। इससे उपन्यासकार की मनोवैज्ञानिक दृष्टि और गहरे सर्वेक्षण का ज्ञान होता है। एक पुरुष और नारी की खामोश जवान और बोलती हुई किरण की साँस इससे श्रेष्ठ अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है।

"बशीर" के चरित्र की त्रासदी आज के युग की गंभीर त्रासदी है और

एक बड़ी समस्या भी कि एक बच्चे को पिता का निर्धारण इस कारण से नह हो सका कि उसको माता के कई पति थे । वशांतर निरन्तर मानसिक कूष्ठा और संक्रास से ग्रस्त रहता है । यह संक्रास और इसका तीव्र बोध इस उपन्यास को एक महत्त्वपूर्ण विशेषता बन कर उभरी है । सभी पात्र अपनी समस्याओं के पाश में आबद्ध हैं । आरिफ "रफ़ात" से प्रेम का दावा करता है परन्तु बूढ़ा "अरशाद" और "अजीज" उसके मार्ग को सबसे बड़ी रुकावटें है । वह निरन्तर आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त रहता है । पात्रों का यह संकुचित संक्रास अन्तर्द्वन्द्व और बिखराव ही इस उपन्यास को विशिष्ट बनाते हैं ।

"अजीज" और उसके माता पिता भी आज के युग के संक्रास का शिकार हैं । उसके पिता घर में भी अपने सम्मान के लिये तरसते हैं । उसको माता एक बीमार एवं चिडचिड़ी नारी है । और स्वयं "अजीज" तो इस युग का सर्वाधिकी भयभीत चरित्र है । वह शुद्ध बीसवीं शताब्दी का मानव है । लगभग अर्ध पागल है । सपने देखता है और बिना किसी कारण अपनी ओर से क्षमा माँगने लगता है । वह सबसे आज की तिथि पूछता है और जब उसको तिथि बताई जाती है तो वह स्वप्न की तिथि बन जाती है । अजीज युग के विनम्र का जीवन्त दस्तावेज बन कर उभरा है । वह मुनीर से कहता है "मुनीर साहब, मेरा जिस्म, मेरा जिस्म, मेरा जिस्म नहीं है । मैंने डाक्टर याकूब के पास जाकर बेच दिया था और सारे पैसे लेकर आपके पास आ गया था कि आप मुझे घर छोड़ आयें और मेरे अब्बा से कहें कि "अजीज" का जिस्म उल्ला अपना जिस्म नहीं है ।" 1

"रफ़ाज" से प्रेम करने वाले वृद्ध के जीवन में एक अशून्य था जिसे "रफ़ात" पूर्ण कर रही थी । वह आरिफ से कहता है "आरिफ नवाज़ मेरी मुहब्बत एक सोच का नाम है ।" 2 वस्तुतः यह सभी पात्र प्रेम के प्यासे हैं । इनको कहीं से भी यथार्थ प्रेम नहीं मिला । यह वृद्ध अपने प्रेम के विभिन्न पक्षों

1. फारूक खालिद : स्याह आइने पृ० 298

2. वही

पृ० 587

पर प्रकाश डालता है। यद्यपि उसे इस बात का सहसास है कि प्रकट रूप में वह किसी से प्रेम करने या प्रेम किये जाने के योग्य नहीं है परन्तु उसे अपने प्रेम पर पूर्ण विश्वास है। "रफ़ात" उसके विश्वास को और भी टूट करती है। वह उसके साथ विवाह के लिये भी तैयार है। वह "आरिफ़" का प्रस्ताव धन, कार कोठी सबको ठुकरा देती है और यह कह कर कि उसका विवाह परिवार के ही एक लड़के से हो रहा है, "आरिफ़" को एक स्थायी संत्रास देकर चली जाती है और यह कथा किसी सीमा तक पूर्ण हो जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस उपन्यास का प्रत्येक चरित्र यूँ ही अन्यकक्षर में हाथ पाँव मार रहा है। उसके सम्मुख जीवन की दो टूक कल्पना नहीं है। न ही उसके प्रेम का कोई स्तर है। वस्तुतः यही आज के मानव का चिन्तन है और नव युवकों की समस्या भी, जिसको श्रेष्ठ ढंग से अन्तर्द्वन्द्व संत्रास, व्यर्थता बोध और कन्फ़्यूजन के रूप में दिखाने का सफल प्रयास किया गया है। "बशीर" इन्हीं अस्तित्व हीन नव युवकों का प्रतीक है। इन्हीं अस्तित्ववादी इन्सानों का मस्तिष्क "अजीज" और "कुलसूम" के समीप भी है। "बशीर" अभी तक इस रहस्य को सुझा नहीं सका है कि उसे अस्पताल में छोड़ने के पीछे क्या है? आखिर मुझे अस्पताल में छोड़ने की जरूरत क्या थी। क्या वाकई मुझे अस्पताल में छोड़ दिया गया था। लेकिन वह लोग कौन थे जो मुझे अस्पताल छोड़कर चले गये थे या मुझसे पहले भी ऐसा हुआ था। क्या इससे पहले भी वह औरत मेरे भाइया और बहनों को अस्पताल छोड़ कर चली जाती रही थी। कौन जाने वह अस्पताल की दहलीज थी या गन्दी नाली का नाका।¹

इस मानसिक बिखराव का धाकरर कौसर भी है। उसकी यह आकांक्षा है कि "फैय्याजी" बशीर" को अपना बेटा और उसे अपनी पत्नी समझे। वह उसे याद दिलाती है कि वह किस तरह से "बशीर" का बाप बना था। जब उसे

गुन्डों ने घेर लिया था तो एक मुँहों वाला व्यक्ति जिसका कोई नाम नहीं था उसे एक स्थान पर ले गया था और उससे कहा था "इस जिस्म को एक दफ्तर सम्म लो । एक फैक्ट्री की एक कारखाना या एक मिल तसुस्वर {कल्पना} कर लो जहाँ तुम्हें काम करना है । यह जगह तुम्हारी नहीं है किसी की भी नहीं है । दूसरे लोग यहाँ आया करेंगे और तुम उनके साथ तआवुन {सहयोग} किया करोगी तुम्हें इस फैक्टरी का दरवाजा हर दस्तक पर खोल देना होगा । ... यही तुम्हारी तकदीर है, यह ही तुम्हारी किस्मत ।"¹

शारीर के इस क्रय-विक्रय को दूसरे स्थान पर सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया और यहाँ मछलियों को लड़कियों का प्रतीक बनाया गया है । यह सारा व्यापार भूख और विवशाता पर आधारित है । एक नौ वर्ष की बालिका एक फूल देख कर कहती है "जब पेट भूखा हो तो हुस्न कोई सिफ्त {विशेषता} नहीं रखता और खूब सूखी की तारीफ मुमकिन नहीं रहती ।"² और फिर शारीरों का सौदा होने लगता है । "फैय्याजी" "कौसर" से जो भी कहता है वह मानव की विवशाता का उदाहारण है और अस्तित्ववादी चिन्तन की शिनाख्त भी । इस क्रय विक्रय में हर पात्र अपने स्थान पर चौकन्ना रहता है । मानसिक तंत्रास से ग्रस्त है । पूरा वातावरण कुष्ठा, असन्तुष्टि एवं विवशाता की परिधि में आवद्ध है ।

"फैय्याजी" इस उपन्यास का एक ऐसा पात्र है जो प्रारम्भ से अन्त तक उपन्यास में रहता है पढ़ा लिखा विवेक्षणीय व्यक्ति है । "फिजिक्स" का प्रोफेसर भी रह चुका है । वह अनेक स्थानों पर समाज के खोखले पन की ओर इंगित करता रहता है । परन्तु इस समाज के पास जो सत्रास और घुटन है उसका इलाज किसी कानून के समीप नहीं है । आवश्यक यह है कि पूरे वातावरण के परिवर्तित किया जाये । उपन्यास का एक पात्र के माध्यम से कानून की अर्थहीनता

1. फास्क खालिद : स्पेह आइने पृ० 136

2. वही पृ० 478

पर प्रकाश डालता है "दरअसल कानून बनाने में कुछ नहीं होता । कानून बनाना एक लाटालिज व्यर्थ और अपाटिज अमल है । कानून का पूरा टाँचा हो ना काबिलेतसुब्बर कल्पना है और अपने अन्दर इस्लाह सुधार का वस्फ गुणा नहीं रखता । कानून बनाने के बजाए इन्सान को इन्सान बनने का मौका मिलना चाहिये । आखिर इन्सान पर क्यों शतमाद विश्वास नहीं किया जाता ।"

फैयाजी के सन्दर्भ से धार्मिक जात्याहीनता का भी संकेत मिलता है परन्तु यह संकेत अनुभव के स्तर पर होते तो उसका मूल्य और अर्थवत्ता थी अन्यथा मात्र पुरानी अभिव्यक्ति से क्या लाभ ।

होटल का अस्तित्व भी इस कथा में बड़ा महत्वपूर्ण है । पूरी कथा उसके इर्द-गिर्द घूमती है । इस बारहवरी होटल में बच्चे की लाश प्राप्त होती है । सूत्रधार "मुनीर" फैयाजी "बूढ़ा" आर्स्टिड और "गामन" का भी यहाँ निवास है । इन भाँति इस उपन्यास के आधकांश पात्रों का किसी न किसी भाँति होटल से सम्बन्ध अवश्य रहता है । इन पात्रों का होटल में रहना चरों के वातावरण और छुटन से पलायन की एक सूरत है और मानव के अस्तित्ववादी होने की पहचान और अकेले रहने के बोध की अभिव्यक्ति भी ।

इस उपन्यास ने इतिहास के सन्दर्भ मानवीय जीवन के शिनाखत के श्वासास को तोड़ा है -- आग का दरिया, उदास नस्लें, अग्न, लहू के फूल, और कारे जहाँ दराज है एवं कितो सोमा तक आखर-ए-शब के हमसफर में जिस अतीत या सभ्यता का रोना रोया गया है उसका यहाँ पूर्ण रूप से अभाव है । राजनीति से भी वह सम्बन्ध नहीं रखता और इस भाँति "फाल्ख खालिद" ने उस परंपरा को तोड़ा है जो उर्दू उपन्यास साहित्य में श्रेष्ठता की पहचान बन चुकी थी ।

इस उपन्यास में विभाजन का दर्द पूर्वजों के कारनामों पर गौरव

या इनको दुहाई नहीं मिलती । उपन्यास मात्र अपने समाज के इस संक्रास को उभारता है जो स्वतन्त्रता के पश्चात् उत्पन्न हो रहा है । हर चरित्र अपने अन्तः के साथ व्यक्त हो गया है । उसकी समस्याओं, उलझनों और मनो-वैज्ञानिक तनावों से पाठक न मात्र परिचित होता है प्रत्युत उन्हें महसूस भी करता है । अस्तित्ववादी चिन्तन एवं बोध पूरे उपन्यास पर हावी है । सभी पात्र सहम, भयभीत और निराश हैं और वह अपने व्यष्टि की परिधि से बाहर नहीं आते । उनको मात्र अपनी समस्याओं से रुचि है । उनको अपनी समस्याओं से हो फुरसत नहीं मिलती ।

“फारुक खालिद” का रवैय्या प्रस्तुत उपन्यास में न मात्र नया है प्रत्युत उसकी भाषा और शब्द भी नये और हमारे युग के हैं जिसके कारण उनके शिल्प की पहचान सुविधापूर्वक हो जाती है । वाक्यों की बनावट और उपमाएँ भी नवीन हैं । जैसे--“हवा किस कदर स्याह हो गयी थी ।” “मकानात क्यों बह रहे हैं ।” अथवा--“आरिफ ! मैं इस लड़कों के जिस्म पर बालों के साये देखूँगा । और इन सायों को या तो मिटा दूँगा या फिर इन्हें खाके समझ कर इनमें अपनी मर्जी के रंग भरने शरु कर दूँगा ।”¹ इत्यादि ।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि यह अपनी भाषा अंदाज बयान और रवैय्ये के स्तरवार से नया उपन्यास है । “खुदा की बस्ती” जो अपने विषय के स्तरवार से इसके कुछ समीप है, इस उपन्यास से बहुत पीछे रह गया है । इसका एक बड़ा कारण उस युग के बोध और आज के बोध का अन्तर भी हो सकता है । इस उपन्यास में अधिक गहराई और चरित्रों का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व मिलता है जो आज के मानव की वासदी है । और यही वासदी “स्याह आइने” को उपन्यास साहित्य का महत्वपूर्ण प्रकाश स्तम्भ बना देती है ।

आखिरी शब्द के हमसफर--कुर्स्तुल ऐन हैदर §1979§

कुर्स्तुल ऐन हैदर का यह उपन्यास जो उनके अनुसार बंगाल के आतंकवादों और क्रान्तिकारी आन्दोलन, 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन पाकिस्तान की मांग, भारत विभाजन और बंगलादेश के निर्माण के परिदृश्य में लिखा गया है उनके पहले के तीन उपन्यासों से वातावरण और परिवेश के स्तरों से भिन्न है।

आखिरी शब्द के हमसफर के पात्रों में जीवन से वह पलायन या असंतुष्टि नहीं है जो "आग के दरिया" के पात्रों की समष्टिगत विशिष्टता थी। "आग के दरिया" के पात्र निरस्य होकर शान्ति की खोज में संलग्न थे परन्तु इस उपन्यास के अधिकांश पात्रों के जीवन का प्रारम्भिक अंश परिश्रम सक्रियता और कर्म में बीता है। "आग का दरिया" के पूरे परिवेश में जो नैराश्य और पराजय का भाव था वह यहाँ लगभग आधे उपन्यास के पश्चात् प्रारम्भ होता है तथापि थकावट के शाश्वत बोध से वह दामन नहीं बचा सकी है। यहाँ भी घिरित थक कर समझौता कर बैठते हैं और इस प्रकार उपन्यास का पूर्ण प्रभाव अन्य उपन्यासों से भिन्न नहीं है। इस उपन्यास में भी जीवन और सृष्टि के सम्बन्ध में कलाकार का वही रवैया सामने आता है जो मेरे भी सनम खाने और आग का दरिया में पाया जाता है। काल और समय की सत्ता का स्हसास और उसके सामने व्यक्ति की आकांक्षाओं और स्वप्नों की पराजय-यही उपन्यास की मूल संवेदना है।

उपन्यास का विषय बंगाल के रहस्यमयी परिवेश में विकसित होने वाली वामपंथी विचारधारा का आतंकवादी आन्दोलन और उसका परिणाम है। उपन्यास के पात्र क्रान्तिकारी भावना से आपूरित हैं और आतंकवाद के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील भी। दीपाली, उमाराय, रेहानुद्दीन अहमद, यास्मीन रोजी सब ही क्रान्तिकारी विचार रखते हैं और विभिन्न षोड़ा के मध्य से भी गुज़रते हैं परन्तु समय और परिस्थितियों के साथ

समझौता कर लेते हैं। आन्दोलन से सम्बद्ध व्यक्तियों में दीपाली सरकार के अतिरिक्त कोई अन्य इस परीक्षा में पूरा नहीं उतरता। अधिकांश चरित्र अन्ततः अपने मानसिक, भावनात्मक या आर्थिक हितों के कारण अपने स्वप्नों से मुंह मोड़ कर समय और परिस्थितियों के साथ समझौता कर लेते हैं या समय और परिस्थितियों उन्हें उनके सुखों से दूर ले जाती हैं और वह स्वयं को ऐसा जीवन व्यतीत करने पर विवश पाते हैं जो उनके आइडियल्स के विरुद्ध होता है। अधिकांशतया चरित्र स्टेबलिस्मैन्ट के शिकार हो गये हैं। यह दोहरा और परिवर्तित होता हुआ रवैया हमारे युग को मजबूरी है और शिनाख्त भी—जीवन के इस चिन्तन और एहसास ने इस उपन्यास के इस युग के नवयुवकों को त्रासदी बना कर प्रस्तुत कर दिया है। वस्तुस्थिति यह है कि इन पात्रों ने पराजित होकर जहाँ जीवन से समझौता किया है वही से इस नये युग का मानव अपने जीवन का सूत्रपात करता है।

स्वप्न देखना या अपने लिये आदर्श का चयन करना एक शाश्वत सत्य है। "अर्जुमंद मंजिल" के ही परिवार से रेहानुद्दीन अहमद की बहन, "रानिया" की पुत्री नासरा नजुसहर एक नवीन क्रान्तिकारी के रूप में सम्मुख आती है।

"आखिरी शब्द के हमसफर" में सम्भवतः हैदर ने यह दिखलाया है कि इन्कलाबी मर्दों और औरतों ने जिस मकसद को अपना आइडियल बनाया वह उनका इसलिए जहनी और जज्बाती मसला नहीं बन सका क्योंकि यह बुनियादी तौर पर मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखते थे और दरअसल तहरीक में अमली दिलचस्पी या उनका इन्कलाबी स्नान महज़ उनका रुमान था यह उनकी महरूमियों का बदल था और जब यह महरूमियाँ हुईं तो वह अपने आइडियल से भी दस्तबरदार हो गये।

बानो कुदसिया--राजा गिद्ध §198। §

राजा गिद्ध एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण कृति है। उपन्यास का

वास्तविक विषय आधुनिक भौतिकवादी समाज में व्यक्ति को एकान्तिकता है। एकान्तिकता के इस विश्लेषण में उपन्यास के समस्त महत्वपूर्ण चरित्र क्यूम, सोनो, उमतुल और सुहेल इसी यथार्थ को ओर संकेत करते हैं। यह पात्र अस्तित्व की सार्थकता की शिनाख्त में जिन अनुभवों से गुजरते हैं उसने उपन्यास को एक त्रासद स्वरूप प्रदान किया है। परिणाम स्वरूप उनके मस्तिष्क और रूह में जीवन की अर्थहीनता का बोध और मृत्यु से साक्षात्कार की आकांक्षा जागृत हो जाती है।

कहानी के घटनाचक्र का स्थान पाकिस्तान है। यह पाकिस्तान की ओर न केवल पाकिस्तान प्रत्युत समस्त उपमहाद्वीप की नयी पीढ़ी को मानसिक और भावनात्मक पेशीदणियों और संक्रास की कथा है। सन् 47 में पाकिस्तान के अस्तित्व के बाद जिस समाज की संरचना हुई उसकी आधारशिला भौतिकता रही। क्रमशः जागीरदारों और नवाबों के स्थान पर पूँजीवादी वर्ग उभरा और भौतिकतावादी दृष्टिकोण और कृत्रिमता का प्रभाव बढ़ता गया परिणामस्वरूप नौजवानों में एक मानसिक संक्रास और आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व और संपर्क की स्थिति उत्पन्न हुई। उपन्यास में मानवीय जीवन की जिन स्थितियों की ओर संकेत किया गया है वस्तुतः वह दूसरे विश्व युद्ध के बाद पश्चिम के विभाजन के पश्चात् भारतीय उपमहाद्वीप में मानवीय जीवन की समस्याओं के रूप में उभरी है। पश्चात्य जगत् में अस्तित्ववादी दर्शन की बृद्ध भावना हुई और उसका प्रभावपरक वाद भारतीय उपमहाद्वीप के साहित्य पर भी दृष्टिगत होता है। अस्तित्ववाद को ही आधार बना कर उपन्यास नहीं लिखा गया परन्तु उसका प्रभाव अवश्य मिलता है। कुरुलुल एन हैदर के उपन्यास "आग का दरिया" और "सोताहरण" में इसी चेतना की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है।

इस उपन्यास का प्रत्येक महत्वपूर्ण पात्र अपने अस्तित्व की आन्तरिकता में विभिन्न अनुभवों का यात्री है और परिणामतः तन्हाई, आत्महत्या, मृत्यु या पागलपन उसकी नियति बन जाता है।

"राजा गिद्ध" के केन्द्रीय पात्र क्यूम भी अपने जीवन में प्रेम के अनुभव से इस रहस्य को ज्ञात करता है। वह अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति इस रूप में करता है--"अब मुझ पर ये हकीकत खुल रही हैं कि इन्सान जब तक चाहे जाने की रब बनने की आरजू रखता वह कभी भी आजाद नहीं हो सकता चाहा जाना और आजाद रहना सलीब के बाजू हैं जिन पर आदमी मस्तूब हो जाता है। पहली मर्तबा मुझे महात्मा बुद्ध को समझ आई कि वह क्यों ख्वाद्दिश को खत्म करके अपनी मुक्ति चाहता था। जब तक इंसान में हल्की सी ख्वाद्दिश भी हो वह ताबअ रहता है। ख्वाद्दिश की वजह से कैदी होता है कभी हाकिम नहीं हो सकता। ख्वाद्दिश से आजादी क्योंकि मुमकिन है। क्योंकि। कैसे। हर मसलक से, हर बुत से छुटकारा हासिल करने का एक ही तरीका है कि इंसान हर किस्म के बुत तोड़ दे, हर मसलक से आजाद हो जाये, किसी मिल्लत में शामिल न हो, किसी मुल्क का बाशिन्दा न हो, किसी माआशरे का फर्द न हो न किसी कल्चर से बावस्ता न हो किसी खानदान का फर्द न हो न किसी श का आशिक न महबूब हर कैफियत से आजाद। ऐसी हालत में सिवाए मौत के और किसी का मरहूने मिनात नहीं होगा, किसी और का आशिक नहीं होगा। मौत जो यकीनी है। मौत से पहले मौत, सबकी साइकी जानती है। इंसान मौत के बगैर मुकम्मल तौर पर आजाद कभी आजाद नहीं हो सकता। वाहमात का तमाम बोझ इंसान के कंधों से उतारने वाली सिर्फ मौत है।"

क्यूम उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र और उसका सूत्रधार भी है। उसका अतीत वस्तुतः परिवर्तित होते हुई सामाजिक परिदृश्य का प्रतीक है। बंजर होती हुई जमीन वह अतीत है जो नये समाज के लिये अपनी अर्थवत्ता खो चुका है उसका बड़ा भाई नये पाकिस्तानी समाज का प्रतीक है जिसके निकट मूल्यों वाले समाज को अब कोई आवश्यकता नहीं रही है। क्यूम एक जागृत मस्तिष्क रखता है और अस्तित्व की आन्तरिकता में नए आतंकवादी मूल्य का अनुभव करता है। क्यूम का यही अनुभव उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक

बिखरा हुआ है। वह अपनी और अपने बिरादरी को तुलना गिद्ध से करता है जो उसके प्रसंग में सम्पूर्ण मानवजाति कार्यों को व्याख्या और उसका प्रतीक भी है।

समाज एक ऐसे वातावरण का सर्जन कर रहा है जहाँ न सोनी को पिता का प्रेम मिलता है और न ही प्रेमो का। सोनी के मां बाप भौतिकतावादी और अन्तर्विरोधों से ग्रस्त समाज के प्रतीक हैं, सोनी के शब्दों में "पाकिस्तान का ऊँचा ब्यूरोक्रेट यह थोड़ी सोचता है कि उसको बेटी के भी कुछ मसाले हैं। उसके अपने मस्तमल के जाती पेजो खक इतने ज्यादा हैं कि किसी के मुताहिलक सोच भी नहीं सकता। जब पापा सुबह उठते हैं तो उनके दिमाग में आफिफा फाइलें, अपनी साख पोजीशन, स्टेटस अनगिनत मसले होते हैं दफ्तर पहुँच कर वह काम नहीं कर सकते। वहाँ भी फोन वाले, मीटिंग, मुलाकाती, दफ्तरी में वक्त गुजरता है। इतने सारे भुलव्वे में अगर कभी उन्हें मुसरत की तलाश भी करना पड़े तो वह बेटी के पास मामा-भागा छोड़ी आयेगा। वह किसी नवजवान लड़की को तलाश न करेगा।"¹

अन्ततः हम कह सकते हैं कि बानो कदसिया ने राजा गिद्ध में अस्तित्ववादो दर्शन, किरदारों की ज़हनी उत्खनन और सोच को बड़े कलात्मक रूप में रखा है। उन्होंने किरदारों के अमलो आमाल, अहसास और परिवेश के जीवंत चित्रण किया है। इस प्रकार वे उपन्यास को विशिष्ट आयाम प्रदान करती हैं।

1. राजा गिद्ध, पृ० 211

प्रमुख साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : आलोचनात्मक अध्ययन

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य की चर्चा कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ऐतिहासिक काल खण्ड में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं। ये भारतीय समाज का स्वतन्त्रता के बाद का सबसे अधिक परिवर्तनों का काल खण्ड है। हिन्दी उपन्यास साहित्य की अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ इसी समय प्रकाशित हुईं। इसलिए इस अध्याय में समकालीन परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास के माध्यम से समय और परिवर्तन को देखने तथा परखने का प्रयास किया गया है।

"अधरे बन्द कमरे" - मोहन राकेश §196।§

मोहन राकेश का पहला उपन्यास "अधरे बन्द कमरे" §196।§ है। उपन्यास में मधुसूदन, नीलिमा, हरवंश, गुक्ला ने मुख्य भूमिका निभाई है। इनके अतिरिक्त इस उपन्यास में अन्य सह पात्र भी हैं। उपन्यास में मधुसूदन एक पत्रकार की भूमिका निभाता है। वह दिल्ली नौ वर्ष बाद लौटता है जो उसे अब बहुत बदली हुई दिखाई पड़ती है। एक दिन उसे अपना मित्र हरवंश मिल जाता है जिसे वह घर ले जाकर अपनी पत्नी नीलिमा और साली गुक्ला से भी मिलवाता है। हरवंश अपने दाम्पत्य जीवन से सन्तुष्ट नहीं रहता है और एक दिन वह मतभेद होने के कारण घर बार छोड़ कर चला जाता है। इधर नीलिमा सुरजीत से घुलमिल जाती है। मधुसूदन का परिचय महिला पत्रकार सुष्मा श्रीवास्तव से हो जाता है जो मधुसूदन से बहुत प्रभावित होती है।

मोहन राकेश ने इस उपन्यास के माध्यम से यह दिखलाने का प्रयास किया है कि दिल्ली जैसे महानगर में स्त्री-पुरुष और आदमी-आदमी के बीच तनावों से युक्त सामाजिक और वैयक्तिक सम्बन्धों की दशा कैसी है। यद्यपि सभी का सम्बन्ध ग्रामीण संस्कृति से है परन्तु सभी के ऊपर शहरी संस्कृति हावी होती दिखाई पड़ती है। परन्तु फिर भी गाँव से जुड़े होने के कारण उनमें गाँव

को तो पहचान, सहयोग, सौहार्द, हमदर्दी, दिखाई पड़ती है जो गहरों में नहीं है। महानगरीय जीवन पूरी तरह से औपचारिकताओं और आडम्बरों से भरे हुए है जहाँ स्वयं को प्रतिष्ठित करने की होड़, दौड़धूप मशीन के पुर्जे की भाँति जिन्दगी अविश्वास, संदेह, अजनबीपन और रिक्तता पूर्ण पूर्ण जीवन में दिखाई पड़ती है। ऐसा लगता है कि उच्च वर्गीय नग्न संस्कृति को अपना नाही आधुनिकता की पहचान है। उच्च वर्गीय सम्बन्ध आधुनिकता बोध को समझने का साधन तो बन सकते हैं परन्तु उनकी स्वीकृति किसी भी भाँति आधुनिकता की स्वीकृति नहीं हो सकती।

यहाँ हर सम्बन्ध पैरे पर टिका है। एक तरफ हरवंश नैतिक मूल्यों की बात करता है दूसरी तरफ वह नीलिमा के नृत्य के कारण सांस्कृतिक क्लब का सचिव बनता है। हरवंश व्यावहारिक स्तर पर पूरी तरह से रुढ़िवादी दिखाई पड़ता है। वह नीलिमा को किसी से भी बात करते देख कर शक करने लगता है। दूसरी तरफ नीलिमा अपना स्वतन्त्र विकास करना चाहती है। नीलिमा और हरवंश दोनों ही पारिवारिक जीवन के अधिक कमरे में बन्द है। जहाँ से निकलना भी उनके लिए मुश्किल है और प्रकाश के लिए दीवार तोड़ना भी। दोनों की तनाव की स्थिति एक दूसरे को सफलता से वंचित रखती है मधुसूदन इन तनावों को तटस्थ रूप से देखता है। नीलिमा न चाहते हुए भी हरवंश के कारण कलाकार बनती है और जब वह कलाकार बन जाती है तो सफलता उसकी एक अलग पहचान बना देती है। जब वह अपने व्यक्तित्व को हरवंश से अलग करके देखना चाहती है जबकि हरवंश उसे शास्त्र के रूप में प्रयोग करना चाहता है। यह उपन्यास पति-पत्नी के बीच सह अस्तित्व और स्वतन्त्र व्यक्तित्व की समस्या से जुड़ा है।

लेखक ने मध्यम वर्ग के यथार्थ को खोलकर रख दिया है। इन लोगों का ध्यान जीवन से जुड़ी समस्याओं की तरफ नहीं जाता है बल्कि माल यौन सम्बन्धों की चर्चा बनकर रह गया है। अपने व्यक्तित्व स्तर को ऊपर उठाने में पत्नी क्या-क्या भूमिका अदा कर सकती है यह महानगर की पत्नी का मूल रूप ही है जो वह पति को पदोन्नति तथा बड़े-बड़े लाभ दिलवा देती है। अपने आपको भीड़ में छोटा, एकदम बीना देखता है और वह उठाकर ऊपर लटकी हुई किसी

चीज को तोड़ लेने की कोशिश करता है कोई देख न ले, बाँह नीची करता है और अपने आप पर अपने अकेलेपन पर अंकुश लाता है। सुरजीत दृष्टवंश के ऊपर उठे हुए हाथों में रिकार्ड प्लेयर रख देता है और उसके पास से उठा लेता है। शकुला को। इसका समाधान डा० सुरेश सिन्हा आत्म संतोष बताते हैं।¹ कितना बड़ा उपहास है आधुनिकताका। आज मध्यम वर्ग के सामने बहुत बड़ी चुनौती है पर आत्मनिष्ठ और आत्मतोष पूँजीवादी चुनौती का उत्तर नहीं। इसका उत्तर केवल वर्गीय संघर्ष में मध्यवर्ग की सकारात्मक एवं सार्यक भूमिका है। लेखक मधुसूदन को सैद्धान्तिक व्यक्ति के रूप में दिखाता है। वह जिन्दगी से टूटा है वह जीवन में संगति खोजना चाहता है परन्तु टुकड़ों से अपनी जिन्दगी से नहीं जोड़ना चाहता इसीलिए वह लगातार भटकता और अस्थिर रहता है। अन्त में मधुसूदन पर आरोपित आदर्शवाद नकली आस्था का प्रतीक बनता है जो एक ओर उपन्यास को यांत्रिक बनाता है तो दूसरी ओर आधुनिकता की प्रक्रिया में अवरोध भी उपस्थित करता है। भाषायी दृष्टि से यह बहुत ही समर्थ और प्रवाहमय है।

वे दिन - निर्मल वर्मा §1964§
=====

"वे दिन" निर्मल वर्मा का प्रथम लघु उपन्यास है जिसमें लेखक ने चेकोस्लोवाकिया के तीन दिनों का वर्णन किया है। इस उपन्यास में मानवीय सम्बन्धों की जटिलता और यूरोपीय जीवन में व्याप्त आतंक को सामने लाया गया है। यह उपन्यास अपने आप में एक अलग तरह का उपन्यास है। इसके न तो घटनाओं का अम्बार है और न ही अनावश्यक प्रसंगों की भरमार। सम्पूर्ण कथा में मानवीय संवेदनाओं को बहुत गहराई से उभारा गया है। इस उपन्यास में पूरा माहौल उदासीन, जटिल और आतंक से भरा हुआ दिखाई पड़ता। इसके भाटिया, टी० डी० प्रान्टा और मैं सभी उलझे हुए सम्बन्धों और जटिल मनोभावनाओं से संघर्ष करते दिखाई देते हैं।

1. डा० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ-35।

“वे दिन” द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप उपजी मन:-

स्थितियाँ को बखूबी व्यक्त करता है। दूसरे भाग में फ्रान्ज, मरिया और मैं तथा रेना को कथारें उनके जटिल सम्बन्धों की ओर संकेत करती है।

लेखक ने मन को बेचैनी और अस्थिरता तथा अज्ञात भय को कलात्मकता से व्यक्त किया है। उदासीनता और भय प्रभावशाली ढंग से उभरकर सामने आये हैं।

परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि पता नहीं क्यों लेखक इसमें आतंक, भय, अन्विष्ट आदि के सामाजिक और आर्थिक कारणों की ओर क्यों संकेत नहीं करता है। अगर लेखक ने ऐसा किया होता तो यह उपन्यास की एक उपलब्धि मानो जा सकती थी। ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि जैसे लेखक ने ऊमरी

सतह पर फैली हुई चीजों को भावुकताका भेजो हुई शैली में सामने रख दिया और वह यूरोपीय जीवन की समस्याओं में सामाजिक, आर्थिक कारणों तक

नहीं पहुँच पाया। यूरोपीय संवेदना की जटिलता के सामाजिक और आर्थिक कारण रहे हैं जिनको अनदेखा करना उचित नहीं है। समसामयिक आधुनिकता के बोध से युक्त निर्मल वर्मा का यह लघु उपन्यास हिन्दी भाषा की उपलब्धि कहा जा सकता है।

“वे दिन” का मूल्यांकन उपन्यास के यथार्थ के किन्हीं वर्गीकृत दायरों में संभव नहीं है। अवश्य ही निर्मल वर्मा की यह एक पठनीय कृति है जिसका आधार प्रेम और उसका अकेलापन तथा किसी अर्थ में स्वयं मानव

नियति है। निर्मल वर्मा राब्सग्रिये से सहमत जान पड़ते हैं, जिसके अनुसार यथार्थ लेखक से अलग है, बाहर और ठोस और अपनी जीवन क्रिया से स्वयं चालित। इसीलिए हम उसे अनेक पहलुओं से देखते हैं और हर पहलू की अन्तहीन सम्भावनाएँ हैं और संभावना संदिग्ध है। निर्मल यथार्थ की सम्भावनाएँ जानते हैं और इसीलिए यह भी जानते हैं कि हर लेखक उन्हें अस्वीकार करके ही लिखता है। वे व्यक्ति के अकेलेपन से अधिक मनुष्य के बुनियादी अकेलेपन के लेखक हैं।

कुल मिलाकर अपनी सीमाओं में “वे दिन” एक अच्छा प्रयोग कहा जा सकता है।

अमृत और विष-अमृत लाल नागर §1966§
=====

इस उपन्यास के प्रारम्भ में पाठक रम नहीं पाता है, परन्तु धीरे-धीरे वह इसके कथा-सूत्र को पकड़कर इसके कथानक में न केवल डूब जाता है, बल्कि उसे इस नये ढंग के शिल्प में विशेष आनन्द आने लगता है। यह सब अमृत लाल नागर की प्रतिभा, उनकी समर्थ भाषा और कथा शैली के कारण सम्भव हो पाता है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक अरविन्द शंकर है, जो कि उपन्यासकार है। अरविन्द शंकर के देखते-देखते समाज में अनेक परिवर्तन आते हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव सामाजिक व्यवस्था और स्वस्थ सामाजिक मूल्यों पर पड़ता है। परिणामस्वरूप ये परिवर्तन न केवल पोटियों के स्तर पर परिलक्षित होते हैं, बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर भी मनुष्य इनसे प्रभावित होता है। जिससे मनुष्य के विभिन्न रूप-जटिल, क्रूर, मानवीय आदि सामने आते हैं। समाज के बदलते हुए इसी परिदृश्य और परिवेश के कारण समाज में नैतिक, अनैतिक, साम्प्रदायिकता, धार्मिक, राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं। इन्हीं घटनाओं और परिवर्तनों आदि का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को उपन्यासकार अरविन्द शंकर अपनी स्मृतियों के आधार पर गहराई से देखता है और यही से वह अपने कथानक का सृजन करता है—“मेरे जीवन भर के अनुभव सिद्ध औपन्यासिक संस्कारों को उन नव युवक पात्रों के सहारे अपने आप युग-कथा में प्रवेश पाने दो।”¹

अरविन्द शंकर मध्यवर्ग का एक सद्गृहस्थ है। वह अपनी जीवन संगिणी माया से पूर्ण सन्तुष्ट है, लेकिन अपने बेटों और बेटी की तरफ से वह सन्तुष्ट नहीं है। बावजूद इस सबके उसका पारिवारिक जीवन सन्तोषप्रद ही है। साहित्य के प्रति उसके विशेष लगाव को देखकर नगर में उसको सम्मान देने के लिए एक आयोजन किया जा रहा है। उसकी छठित्ति के दिन अरविन्द शंकर अपने पूर्वजों और अपने

1. अमृत लाल नागर : अमृत और विष §छात्र संस्करण-1971 §, पृ०-46

जीवन के अनुभवों के बारे में सोचता है। यही से वह अपने उपन्यास के कथ्य के विषय में ताना-बाना बनाना शुरू करता है।

अमृत लाल नागर के इस उपन्यास का कथन फलक बहुत विस्तृत है। उन्होंने इस उपन्यास में जहाँ अनेक पीढ़ियों के माध्यम से समाज के टाँचे के लम्बे विकास को चित्रित किया है वहीं उपन्यास के नायक अरविन्द शंकर की काल-अवधि में समाज में आये परिवर्तन को भी सफलता के साथ रेखांकित किया है। इस प्रकार उन्होंने विक्टोरिया काल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल के भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के उत्थान पतन पर गहराई से प्रकाश डालते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों, मान्यताओं और प्रवृत्तियों को भी यथार्थ के धरातल पर उबार कर दिया है।

उपन्यास के प्रमुख पात्रों-रमेशा, लछू, पुत्तीगुरु, मन्नो, रानी, खन्ना, श्रीमती खन्ना, डा० आत्माराम आदि के माध्यम से मध्यवर्गीय और निम्न वर्गीय सामाजिक विचारों और उनके सम्बन्धों की भावात्मकता को लेखक ने गहराई से पकड़ा है। इसीलिए यह पात्र बहुत सजीव और जीवन्त हैं। ये सभी पात्र जिस मानसिक संघर्ष को लेकर पाठक के सामने आते हैं, उससे वे कल्पित पात्र कदापि नहीं लगते। रमेशा, लछू, मन्नो, रानी जैसे जोते-जागते लोग अनेक मिल जायेंगे।

उपन्यास में लछू का किरदार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लछू प्रतिनिधित्व करता है भारत के उस नौजवान कुपिठत वर्ग का-जो बेकारी, गरीबी से तंग आकर किसी भी मार्ग पर चल सकता है-“ये भी कोई जिन्दगी में जिन्दगी है। एक-एक लोग ऐसे भी पड़े हैं जो “मुँह में चाँदी का चम्मच और हाथ में बैंक की पासबुक” लेकर पैदा होते हैं।”¹ इसी सामाजिक व्यवस्था से लछू का मन नपुंसक क्रोध से तड़फ उठता। यह नपुंसक क्रोध हर उस युवक का जो अभावों में जी रहा है और इन अभावों से ग्रस्त युवक फासिस्टवाद और समाजवाद का अन्तर नहीं समझ

पाता है। इसलिए नागर जी ने इस उपन्यास में अनेक समस्याओं को ओर ध्यान आकर्षित किया है। वे इस उपन्यास में युवा वर्ग को समाज के रूढ़िवादियों पुरानपन्थियों, धार्मिक ढोंगियों और पूँजीपतियों से संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं ताकि वह अपने अधिकारों को हासिल कर सकें। इस प्रकार उपन्यास नवयुवक पात्रों को यह अन्तर्द्वन्द्व अपने भीतर पुराने संस्कारों से जूझते नयी पीढ़ी के युवकों का संघर्ष है, जैसा कि डा० राम विलास शर्मा ने भी कहा है—“अमृत और विष” हिन्दी का पहला उपन्यास है, जिसमें युवकों की भावनाओं, आकांक्षाओं और संघर्षों का इतने विस्तार से चित्रण किया गया है। सिद्धान्त रूप में हर उपन्यासकार मानता है कि हमारा युवक समुदाय देश की महान शक्ति है, राष्ट्र को बनाने-बिगाड़ने की क्षमता उसमें है। ... नागर जी ने बड़ी सहानुभूति से इन युवकों की हृदयगत भावनाओं को परखा और समझा है।¹

इस उपन्यास में नागर जी ने अरविन्द शंकर से ब्रिटिश युग एवं वर्तमान युग की सामाजिक व्यवस्था, उथल-पुथल और जीवन मूल्यों पर अत्यन्त विस्तृत रूप से प्रकाश डालते हुए आजादी के बाद के निम्न वर्ग और युवा वर्ग की स्थिति का यथार्थ परक चित्रण किया है। विभिन्न पात्रों के ज़ुलारू चरित्र से उस संघर्षशील भारतीय युवा वर्ग को जागरूक किया है जो समाज में सदियों से व्याप्त पराजय की भावना, रूढ़िवादी मूल्यों और पतनोन्मुखता से विद्रोह करके अपने अधिकारों और उच्चतर जीवन मूल्यों के प्रति समर्पित हो। इस प्रकार नागर जी ने इस उपन्यास में वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को गहराई से समझने का प्रयास करते हुए भारत के युवा वर्ग का मार्ग दर्शन किया है।

आधा गाँव-राही मासूम खाँ १९६६

राही मासूम खाँ ने अपने बहुचर्चित उपन्यास “आधा गाँव” में उत्तर

प्रदेश के गाजीपुर ज़िले के गंगौली नामक गाँव के ग्रामीण जीवन को अपने कथानक की पृष्ठभूमि बनाया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में सर्वप्रथम गाँव के शिआ मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर "आधा गाँव" में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। यद्यपि गंगौली गाँव में हिन्दुओं और मुसलमानों की कई जातियाँ करती हैं लेकिन राही ने शिआ मुसलमानों के जीवन को ही उपन्यास का केन्द्र बनाया है, इसलिए उपन्यास का शीर्षक "आधा गाँव" उचित प्रतीत होता है।

राही मासूम रज़ा ने इस उपन्यास में सन् 1937 ई० से लेकर 1952 ई० तक की काल अवधि में घटित होने वाली घटनाओं और इन घटनाओं का गंगौली गाँव के शिआ मुसलमानों पर पड़ने वाले प्रभाव को विशेष रूप से रेखांकित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो यह काल बड़ा ही उथल-पुथल से भरा हुआ है। देश की स्वतन्त्रता के लिए चले देशव्यापी आन्दोलन, ब्रिटिश सरकार का दमनात्मक रूप और अगस्त सन् 1947 ई० में भारत का बटवारा होकर पाकिस्तान का निर्माण जमींदारी प्रथा का उन्मूलन आदि इस काल की महत्वपूर्ण घटनाएँ थीं। इन घटनाओं का प्रभाव गंगौली के शिआ मुस्लिम समुदाय पर भी पड़ता है। राही मासूम ने आज़ादी के बाद आये इस परिवर्तन का सजीव एवं जीवंत चित्रण किया है। वे "आधा गाँव" में आज़ादी से पूर्व और भारत विभाजन के बाद मुसलमानों में आये बिखराव, खोखलेपन, कुंठा और उनकी मनः स्थिति को अभिव्यक्त करते हैं।

"आधा गाँव" का गंगौली गाँव शिआ, सुन्नी मुस्लिम-जुलाहे, राकियों, हिन्दू उच्च जाति तथा अछूत हिन्दुओं की पट्टी में बंटा हुआ है। जमींदार शिआ मुस्लिम है। उपन्यास के प्रारम्भ में उत्तर पट्टी और दक्षिण पट्टी के जमींदारों के आपसी तनाव एवं अहंकार से ताजिये के जुलूस में फौजदारी होती है। इस प्रकार राही स्पष्ट कर देते हैं कि जमींदारों का धर्म भी उनकी जमींदारी के सम्मान ही उनकी सम्पत्ति है। लेकिन बावजूद इस सबके गंगौली गाँव सभी समुदाय एक दूसरे से गहरे स्तर पर जुड़े हुए हैं। लेकिन देश में फैली साम्प्रदायिकता

और भारत विभाजन की त्रासदी गंगौली गाँव को भी अपनी जद में ले लेती है। "आधा गाँव" में राहो ने विभाजन की ऐतिहासिक प्रक्रिया से उत्पन्न लोगों की बदलती चेतना को बड़ी सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त किया है। इसी के साथ साथ चली आ रही जमींदारी प्रथा के उन्मूलन स्वरूप गंगौली गाँव के सामाजिक जीवन में आये विशेष परिवर्तन को भी यथार्थ के धरातल पर अंकित किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय साम्प्रदायिक समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया था। देश में साम्प्रदायिकता को फैलाने में मुस्लिम संगठनों के साथ-साथ हिन्दू संगठनों और हिन्दू मानसिकता से ग्रस्त भारतीय हिन्दू नेताओं की प्रतिक्रियावादी एवं पुनरुत्थानवादी नीतियाँ भी इसके लिए उत्तरदायी थीं, क्योंकि साम्प्रदायिक उन्माद की प्रष्ठभूमि का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि साम्प्रदायिक समस्या धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक होने के साथ-साथ राजनीतिक कहीं अधिक थी। राहो ने "आधा गाँव" में आज़ादी के समय हिन्दू-मुस्लिमों के बीच उत्पन्न हुए अलगाव, विद्वेष और देशव्यापी साम्प्रदायिक दंगों के प्रभाव को दिखाते हुए इस तथ्य को विशेष रूप से चित्रित किया है कि जन साधारण मुसलमानों और हिन्दुओं की प्रवृत्ति झगड़े-फसाद को नहीं हैं। बल्कि अपने आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक निहित स्वार्थों की पूर्ति करने वाले राजनीतिज्ञों की दंगा भड़काने में विशेष भूमिका रही है।¹ लेकिन जन साधारण हिन्दुऔर मुस्लिम इन अलगाववादी तत्त्वों के भड़काने में न आकर एकता तथा सदभाव का परिचय देता है।² लेखक उपरोक्त दृष्टिकोण को पुलन मियाँ के इस वाक्य द्वारा भी स्पष्ट कर देता है कि-"पाकिस्तान पेट भरने का खेल है।"³ वास्तव में, साम्प्रदायिक झगड़ों के पीछे राजनीतिक स्वार्थ ही मुख्य कारक था।

1. राहो मासूम रजा : आधा गाँव, पृ० -244

2. वही, पृ० -174

3. वही, पृ० -263

अंग्रेजों का अपने शासन को मज़बूती प्रदान करने के लिए भारत में ज़मींदारी प्रथा को कायम रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण था । आज़ादी के बाद ज़मींदारी टूटने के भय से गंगौली गाँव के शीआ मुस्लिम ज़मींदार पाकिस्तान को दिल से स्वीकार न करते हुए भी लोग को बोट देते हैं । ये ज़मींदार गाँधी जी और कांग्रेस की नीतियों का तीव्र विरोध करते हैं- " इ कांग्रेस वाल तो असाभियन का दिमाग इक दम्मे से खराब कर दिहिन हैं भाई, खुदा सम्झे ई गाँधी से । "। यही कारण है कि ज़मींदारी टूटने के भय हिन्दू अलगाववादी और प्रतिक्रियावादी संगठनों की विध्वंसक कार्यों और मज़हबों जुनून के कारण मुसलमानों का झुकाव लोग की तरफ था । उनमें इसी भय को लोगों नेताओं ने हथियार रूप में इस्तेमाल करके आग में घी का काम किया लेकिन बावजूद इस सबके उन्हें पाकिस्तान में कोई दिलचस्पी नहीं है क्योंकि न वहाँ गंगौली गाँव होगा, न यहाँ की हवेलियाँ होंगी और तन्नु को मुहर्रम की मजलिस भी नहीं मिलेगी, जिसमें भारतीयता का पुट अधिक है ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि विभाजन से पूर्व, विभाजन और उसके प्रभावित लोगों की मनः स्थिति और उनके संघर्ष का आधा गाँव" एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है ।

अलग-अलग चैतरणी--शिवप्रसाद सिंह §1967§

आज़ादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं सहकारी समिति ग्रामीण विकास संस्थाओं और नस्ली सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप गाँवों का निरन्तर विकास हुआ । गाँवों के इस विकास से लोगों के जीवन स्तर में भी परिवर्तन आया । परन्तु सामाजिक सम्बन्धों और जीवन-मूल्यों में बहुत गिरावट आयी । इसी गिरावट के कारण गाँव का जीवन निरन्तर दयनीय होता गया । मुठ्ठी भर लोग गाँव की सत्ता पर काबिज हो गये हैं

जिससे गाँवों में अराजकता पैदा हो गई । "अलग-अलग वैतरणी" में आज़ादी के उपरान्त ग्रामीण समाज में आये इसी परिवर्तन को रेखांकित किया गया है । ज़मींदारों टूटने के बाद जिस मनः स्थिति से "आधा गाँव" के ज़मींदार गुजरते हैं, वही पीड़ा "अलग-अलग वैतरणी" के ज़मींदार जयपाल सिंह की है । आज़ादी के बाद ग्रामीण जीवन में आये आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन से घबराकर जयपाल गाँव छोड़कर शहर चला जाता है । लेकिन जैसे ही गाँव की अर्थात् ग्राम पंचायत की बागडोर जयपाल सिंह के हाथ में आ जाती है वह पुनः गाँव लौट आता है । यह बात ध्यान देने योग्य है कि आज़ादी के बाद भी गाँव की बाग-डोर छात-पीते वर्ग के हाथ में ही रहती है ।

राही मासूम रज़ा "आधा गाँव" में जिस पक्ष पर प्रकाश डालने में सफल नहीं हुए उस पक्ष पर शिव प्रसाद सिंह "अलग-अलग वैतरणी" में विस्तृत रूप से प्रकाश डालते हैं । वह पक्ष है भूमिहीन किसानों और ज़मींदारों के संघर्ष का । वास्तव में जहाँ एक ओर आधुनिक शिक्षा और चेतना ने ग्रामीण समाज में जागरूकता पैदा की, वहीं दूसरी तरफ कृषि के आधुनिकीकरण और हरित क्रांति ने निर्धनता और सम्पन्नता के बीच की दीवार को ओर ऊँचा किया ।

परिणामस्वरूप उत्पन्न वर्ग चेतना ने नये वर्ग संघर्ष को जन्म दिया । यहीं से भू-स्वामियों और खेतिहर मज़दूर के बीच टकराहट होती है । शिव प्रसाद सिंह ने करेता गाँव के ग्राम्य जीवन और उससे सम्बन्धित महत्वपूर्ण परिवर्तनों को चित्रित करते हुए, ग्रामीण जीवन के यौन सम्बन्धों को दिखाते हुए खेतिहर मज़दूर और ज़मींदारों की टकराहट की सफलता के साथ अंकित किया है ।

खेतिहर मज़दूरों में अपने अधिकारों के प्रति आयी जागरूकता और आत्मसम्मान की भावना को वे इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं—"मार के जान ले लो ।

लेकिन हम एक बार नहीं सौ बार कह रहे हैं । हम बिना रोजीना बन्नी के काम नहीं करेंगे । परती खेत लेकर अम्मा अपनी कब्बर बनाएंगे । हमारे छोटे-

छोटे लड़िका चार दिन से भूखे सोय रहे हैं। इससे अइसा काम नहीं होगा।¹ जमींदारों के अमानवीय और निर्दयतापूर्ण अत्याचारों का मज़दूर तीव्र विरोध करते हैं। सरूप भगत की बेटी जुलरिया के साथ श्री सिंह द्वारा छेड़-छाड़ करने पर मज़दूरों की बदशित की सीमा समाप्त हो जाती है और सरूप भगत जुल्म के विरुद्ध प्रतिकार करता है—“इज्जत तो सबकी एक ही है बाबू। चाहे चमार की हो चाहे ठाकुर की। हम आपका काम करते हैं, मजूरी लेते हैं। हमें गरज है कि करते हैं। आपकी गरज है कि कराते हो।” इसका मतलब ई थोड़ा हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।² यह वाक्य उस जगहूँता के प्रतीक हैं, जो सदियों से शोषित और पीड़ित वर्ग में पैदा हो रही है। अगर जरूरत है तो केवल इस वर्ग को उनकी शक्ति का अहसास कराके उन्हें जुट करके संघर्ष के लिए प्रेरित करने की।

ठाकुर जय पाल सिंह करैता गाँव की ग्राम पंचायत का संचालन करते हैं। गाँव गरीब और पीड़ित जनता के शोषण करने में उनके सहायक की भूमिका दायित्व निभाते हैं पुलिस, राजनीतिक नेता, अप्सर आदि। यह सरकारी तन्त्र मिलकर निम्न वर्ग का निरन्तर शोषण करता रहता है। निम्न वर्ग को कहीं से भी न्याय नहीं मिलता है। इस कुचक्र के विरुद्ध अपना स्वर बुलन्द करने वाला मास्टर शाशिकान्त और विपिन दलबन्दी का शिकार होकर हताश हो जाते हैं और अन्त में विपिन दलबन्दी और अन्याय से हार मान कर गाँव छोड़ के शहर चला जाता है। नये राजनीतिक समीकरण और आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्ध अगर गाँव के निम्न वर्ग को कुछ देते हैं तो कुंठा और असहाय होने का भाव। जगन मितिर के ये शब्द—“यह गाँव साला हरानियों से भर गया है।”³ उसकी व्यथा और असहाय स्थिति को ही प्रकट करते हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि गाँवों में सामाजिक और उच्चतर जीवन का विघटन इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि गाँवों में सामाजिक

1. पित्त प्रसाद सिंह : अलग-अलग वैतरणों, पृ०-240

2. वही पृ० - 249

3. वही पृ०- 533

सम्बन्ध बहुत तेजी से बदल रहे हैं। जिससे आम आदमी का गाँव में रहना बेहद मुश्किल हो रहा है। इस प्रकार अलग-अलग वैतरणों में शिव प्रसाद सिंह ने आज़ादी के उपरान्त गाँव के बदलते हुए परिवेश में जिन्दगी के तमाम पहलुओं को अभिव्यक्ति देकर गाँव की वास्तविकता से परिचय करा दिया है।

राग दरबारी-श्री लाल शुक्ल § 1968 §

=====

साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में "राग दरबारी" का अपना एक विशिष्ट स्थान है। लेखक ने उपन्यास के प्रचलित औपन्यासिक ढाँचे को तोड़कर "रागदरबारी" को वैशिष्ट्य प्रदान कर दिया है। सम्पूर्ण उपन्यास में साहित्यिक मानदण्डों की परवाह किये बगैर जीवन को उसके वास्तविक रूप में उधेड़ने और परखने की कोशिश की गई है। लेखक ने जिन्दगी के उस यथार्थ को देखने का प्रयत्न किया है जो क्रमशः खोखलेपन और मूल्यहीनता का शिकार बनती गई है। "राग दरबारी" में यद्यपि शिवपालगंज के परिवेश को ही आधार बनाया गया है, पर प्रकारान्तर से "राग दरबारी" सम्पूर्ण भारतीय सच्चाई की कथा है, जो एक अभिशप्त और त्रासद स्थिति के बीच घिसट रहा है। भारतीय जीवन के संस्कारहीन रवैय्ये के प्रति व्यंग्यात्मक प्रहार इस बात का अहसास कराता है कि अपनी समस्त तुच्छताओं सहित यथार्थ जीवन यही है। हम भ्रष्ट हैं, हमारा पूरा परिवेश भ्रष्ट है और मूल्यहीनता के पाश में आबद्ध हम इसे ही जीवन का यथार्थ समझ सच्चाई से अँधेरे मूढ़ रहते हैं। उपन्यास के व्यंग्य का केन्द्र हर वह हिन्दुस्तानी है जिसने भ्रष्टाचार को सहज और स्वाभाविक समझकर अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है।

वस्तुतः "राग दरबारी" मानवीय विवशता और दुर्बलता का वह सशक्त दस्तावेज है जो हमारी न्यति बन गया है। "राग दरबारी" का शिवपाल गंज शहर से जुड़ा एक गाँव है, इसलिए शहरी जीवन की समस्त विसंगतियाँ शिवापाल गंज में भी मिलती हैं। वैसे ही गाँव के प्रमुख व्यक्ति हैं। मास्टर खन्ना, रूप्यन, प्रिन्सिपल साहब, बट्टी गयादीन लंगड़ आदि चरित्रों के साथ

हो ब्राह्मण, ठाकुर, चमार आदि के वर्ग चरित्र भी उपन्यास में मिल जाते हैं। कथानक के एक बिन्दु पर वैद्य जी हैं जिनके व्यक्तित्व में समस्त अवसर-वादिता और धूर्तता के दर्शन होते हैं। दूसरे बिन्दु पर लंगड़ है जो अपने जीवन में भ्रष्टाचार रहित समाज का सपना समोये जीवन जीता रहता है। वो अपने संघर्ष से निराश नहीं होता। वो एकान्तरिक ऊर्जा से संचालित है। जबकि रंगनाथ की भावुकता और संघर्ष न कर पाने की स्थिति उसे पलायनवादी बना देती है। उसके जीवन की आसदी है कि वह परिस्थितियों को परिवर्तित नहीं कर पाता। वह हमेशा सोचता है कि कुछ परिवर्तन होना चाहिए। लेकिन क्या करना चाहिए यह अंत तक स्पष्ट नहीं हो पाता है।

उपन्यास में रिक्त और भावना शून्य हो जाने वाले मानव संबंधों को भी उभारा गया है। उपन्यास में स्पष्ट किया गया है कि मानव संबंधों का आधार परम्परागत विश्वास और आस्थाएँ नहीं बल्कि भौतिक सुविधाएँ हैं। आज जो अपना व्यक्तित्व अस्तित्व बनाये रखना चाहता है वो व्यावहारिक लोगों की दृष्टि में मूर्ख और पागल है। जब रंगनाथ खन्ना की जगह न्युक्त होने को स्वीकार नहीं करता तो प्रिंसिपल उससे कहता है —इससे कहाँ तक बचोगे बाबू रंगनाथ। जहाँ जाओगे तुम्हें किसी खन्ना ही की जगह मिलेगी। तुम्हारे विचार बहुत ऊँचे पर कुल मिलाकर उनसे यही साबित होता है कि तुम गये हो, क्योंकि तुम न अपने स्वार्थ के बारे में सोचते हो, न भविष्य के बारे में। आत्मा की आवाज सुनना गलती है।¹

उपन्यास के अधिकांश पात्र एक वैयक्तिक और स्वार्थी दृष्टिकोण रखते हैं और अपना सम्बन्ध न होने पर पूर्णतः तटस्थ दृष्टिकोण अपना लेते हैं। परिणामतः कुंठा, घुटन, निराशा, संक्रांत आज के मानव जीवन की न्यति बन गई है।

निःसंदेह "राग दरबारी" में स्वातंत्र्योत्तर भारत का स्पष्ट लेखा-जोखा प्राप्त होता है। मूल्यहीनता का शिकार हमारा समाज भ्रष्टाचार

और स्वार्थ को धुरी पर सम्बन्धों का निर्माण कर रहा है। जीवन को चुनौतियों को स्वीकारने की उसमें शक्ति नहीं दिखाई पड़ती।

निःसंदेह "राग दरबारी" को इस दृष्टि से विशिष्ट कहा जा सकता है कि इसमें राजनीतिक, नैतिक और सामाजिक अवमूल्यन का चित्रण बहुत ही तीखे ढंग से किया गया है। भाई-भतीजावाद, स्वार्थपरता, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार आदि के निरंकुश चित्रों का स्पष्ट छायांकन द्रष्टव्य है। लेकिन उपन्यास में जटिल और संश्लिष्ट आन्तरिक अनुभूति जीवन का वास्तविक बोध कराने में तो सक्षम है, पर इस व्यवस्था के बदलने के लिए समाधान प्रस्तुत करने में लेखक को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई।

आपका बंटो--मन्नु भण्डारी §197।§

यह एक ऐसे बच्चे की संवेदनाशील कथा है जो पढ़े लिखे स्वतंत्र जीवों माता-पिता की सन्तान है। माता पिता में तलाक हो जाता है तो बालक माँ के पास रह जाता है। उसकी कोमल भावनाओं पर पिता से घिर-विछोह की संभावना का कठोर आघात पहुँचता है। किन्तु फिर भी जननी के सन्तोष एवं प्रसन्नता के लिए अपने आप को समर्पित करता है। स्थिति एक बार फिर बदलती है। बालक की माता पुनर्विवाह करती है। यह बंटो समंजन नहीं कर पाता। वह अपने को उपेक्षित समझने लगता है। उसमें अविनय, आक्रोश एवं अपराध भावना घिरने लगती है। अति संवेदनाशील बालक होने के कारण वह अपनी माता के व्यवहार से भी असंतुष्ट होने लगता है। माँ को डाक्टर के साथ निर्वस्त्र देखता है। बेटों की यौन ग्रन्थियाँ असमय ही उत्तेजित हो उठती हैं, असंतोष के कारण उसमें अपराध ग्रन्थी जागती है। वह छोटे-छोटे नुकसान पहुँचाकर माता को दुःखी करने की मनोवृत्ति बनाता है। वह अपना होम वर्क न करके भी माँ को तड़पाना चाहता है, यही उसका प्रतिकार है। क्यों उसकी माँ डाक्टर की हो गई? क्योंकि वह डाक्टर की प्रसन्नता के लिए उसका पक्ष लेती है। ऐसे अनेक प्रश्न चिह्नों में घिरा बंटो अंततः अपने पिता के पास कलकत्ता चला जाने की सोचने लगता

उसकी माता {शकुन} क्यों गृहस्थी में समंजन की और शायद अपने पूर्व पति की गृहस्थी में विवादास्पद विषय झोंक देने के विचार से बंटी को पिता के पास भेज देने को तैयार हो जाती है। बंटी जाता है, किन्तु उसके सपनों पर भी एक भय छा जाता है। बहुत सारे भावों, विचारों के बीच सब गड़मड़ हो जाता है, बंटी मन में सम्झता है कि वह कहीं का भी नहीं है।

वास्तव में, उपन्यास की मूल कथावस्तु होकर सन्तानवान माता-पिता के तलाक और पुनर्विवाह के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं को उद्घाटित करती है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में बालक के भाव-विकास के अन्तर्गत विभिन्न विकारों, मनोदशाओं, प्रवृत्तियों तथा मनःस्थिति आदि का अध्ययन लेखिका ने उपन्यास का कथ्य बना लिया है। मूल कथा, उक्त कथ्य के रहते गौण प्रतीत होती है। बंटी पर उसकी निरन्तर परिवर्तनशील परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ता है, इसी का उल्लेख, चिन्तन और विश्लेषण लेखिका का प्रदाय बन गया है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि लेखिका ने "आपका बंटी" में आज की नारी वेदना और संवेदनशीलता को बहुत ही मार्मिक ढंग से रूपायित करने के साथ-साथ महानगरीय एवं आधुनिक जीवन सन्दर्भों की कृत्रिमता और खोखलेपन को भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है।

धरती धन न अपना--जगदीश चन्द्र §1972§

प्रस्तुत उपन्यास में जगदीश चन्द्र ने पंजाब के एक गाँव "घोड़ेवाहा" के एक मोहल्ले "चमादड़ी" को आधार बनाकर दलित वर्ग की समस्याओं उनकी असहाय स्थिति और मानसिकता को उजागर करने का प्रयास किया है। लेखक ने इस उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास किया है कि आजादी के उपरान्त ग्रामीण समाज और जीवन में आये विशेष परिवर्तन के बाद भी दलित वर्ग की स्थिति और उनकी मानसिकता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। अपनी

तौर पर तो हमें सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन दिखाई देता है, परन्तु वास्तविकता में उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति और मानसिकता में काफी भेद है। जगदीश चन्द्र ने इसी भेद और अस्मानता को अभिव्यक्ति प्रदान की है। लेखक ने दलित और पीड़ित वर्ग के बराबर जारी शोषण तथा आर्थिक अस्मानता को इन शब्दों में रेखांकित किया है—“आर्थिक अभावों की चक्की में युग युगान्तरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं को भोग रहे हैं, जिस भूमि पर वे रहते हैं ये जिस जमीन को वे जोतते थे यहाँ तक कि जिन छप्परों में वे रहते थे, कुछ भी उनका नहीं था। इन्हीं बातों को देखकर मेरे किशोर मन की वेदना सहसा अपने सभी बांध तोड़कर फूट निकली और मैंने उपेक्षित हरिजनों के जीवन का चित्रण करने का संकल्प कर लिया। प्रस्तुत उपन्यास लिखने का मूल प्रेरणा-बिन्दु यही है।”¹ इस प्रकार लेखक अपने इस उपन्यास में समाज के उपेक्षित वर्ग की समस्याओं को आधार बनाकर हजारों वर्षों से ऊँची जातियों द्वारा किये जाने वाले शोषण को उद्घाटित करते हुए सामाजिक संघर्ष की स्वर प्रदान करता है।

उपन्यास की कथा-वस्तु सपाट होने के बावजूद बेहद प्रभावशाली है। उपन्यास का मूल कथानक यह है कि दलित वर्ग का काली शहर से वापस अपने गाँव लौटकर चमादडी में पक्का घर बनाना चाहता है। हालाँकि वह जानता है कि पक्का घर बनाने पर ऊँची जाति वालों के साथ-साथ उसकी जाति के लोग भी उसे पक्का घर बनाते देख विरोध करेंगे। लेकिन काली तमाम इन सम्भावनाओं को दरकिनारा करते और विरोध होने के बाद भी घर बनाना शुरू कर देता है। लेकिन उसका घर बनाने का सपना पूरा नहीं हो पाता है। गाँव के उच्च वर्ग के लोग उसे ऐसे कुचक्र में फँस देते हैं, जिससे वह यातना, विवशता, हताशा, अपनापन और कुंठा से भरा जीवन जीने को बाध्य हो जाता है।

काली व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर अन्याय के विरुद्ध साहस के साथ

संघर्ष करता है। वह चमादड़ी के लोगों को सामाजिक और आर्थिक अस्मानता के विरुद्ध बराबरी का दर्जा और सामाजिक न्याय दिलाने का भरसक प्रयास करता है, परन्तु उसे असफलता और निराशा के सिवा कुछ नहीं मिलता। इस असफलता, निराशा और कुंठा से ग्रस्त काली की मनःस्थिति का लेखक ने बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया है।

चमादड़ी के दलित वर्ग के लोगों को मानसिकता को लेखक ने उपन्यास के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है। काली को उच्च वर्ग के अमानवीय और क्रूर अत्याचारों को दलित वर्ग द्वारा चुपचाप सहने की वास्तविकता का भास उस समय हो जाता है, जब उसके पास धन समाप्त हो जाता है और वह चौधरी के यहाँ मजदूरी करने के लिए विवश होता है। पूरे गाँव की अधिकांश सम्पत्ति पर चौधरी हरनाम सिंह का ही आधिपत्य है। इसीलिए इस आर्थिक अस्मानता को दूर करने के लिए बार-बार काली के मन में चौधरी से टकराने की इच्छा जागृत होती है।

लेखक ने इस उपन्यास में डा० विशनदास और कामरेड टहली सिंह के माध्यम से तथाकथित कम्युनिस्टों के चरित्र को भी उजागर कर दिया है। जब चमादड़ी का दलित वर्ग उच्च वर्ग के शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध खड़ा हो जाता है तो वर्ग संघर्ष के दर्शन में आस्था रखते हुए भी विशनदास और टहली सिंह अपने कदम पीछे हटा लेते हैं। लेकिन चमादड़ी का दलित वर्ग पीछे नहीं हटता है और वह साहस के साथ सामाजिक अन्याय के विरुद्ध डटा रहता है। काली विशनदास और टहली सिंह के पीछे हटने पर कहता है--“मुझे उम्मेद थी कि डाक्टर हमारी कुछ मदद करेगा। वह रोज कहता है कि वह गरीबों के पक्ष में है। उससे अनाज मांगा तो उसने जवाब दिया कि वह हमारे हक में जलसा करेगा। वह बहुत लम्बी चौड़ी बातें करता है जो मेरी समझ में नहीं आतीं।”¹ काली के इन वाक्यों से लेखक क्रान्ति को मशाल हाथ में उठाये उन लोगों के चरित्र को उजागर कर देता है जो निष्क्रिय और बेकार हैं। वास्तव में, उनकी सारी सोच प्रतिक्रियावादी है।

काली ज्ञानी से प्रेम करता है। वह न तो चमादड़ी के लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने में कामयाब हो पाता है और न अपने प्रेम में। अन्ततः ज्ञानी आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाती है। बाद में काली भी आत्महत्या करने पर विवश हो जाता है। इस प्रकार काली के पक्का मकान बनाने का सपना और आत्महत्या करने के बीच उपन्यास के सफल कथानक और सूक्ष्म घटनाओं के विवरण द्वारा लेखक दलित वर्ग की मानसिकता, यातना, आर्थिक एवं सामाजिक असमानता तथा उस गहरे अन्दरे की भयावहता को उजागर कर देता है जिसमें दलित वर्ग जीने के लिए बाध्य है। इसी के साथ-साथ लेखक फत्ते तथा बसन्ता के माध्यम से दलित वर्ग में आ रही उस जागृकता का भी परिचय दे देता है जो उच्च वर्ग के उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध अपना स्वर बुलन्द करने लगे हैं। यह वर्ग चेतना का प्रतीक है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जगदीश चन्द्र ने "धरती धन न अपना" में दलित वर्ग की मानसिकता को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ-साथ सामाजिक बदलाव के लिए भी जमीन तैयार की है।

तमस--भोष्म साहनी §1973§ ✓

साम्प्रदायिक समस्या और उसके पीछे अपने निहित स्वार्थों को पूरा करने वाली अराजक शक्तियों को मुंशी प्रेमचन्द और उनके समकालीन साहित्यकारों ने बेनकाब करके समाज में सद्भाव स्थापित करने का निरन्तर प्रयास किया था। लेकिन अलगाववादी तथा अराजक शक्तियों अपने राजनीतिक निहित स्वार्थों के लिए हिन्दू-मुस्लिमों में नफरत का ज़हर बराबर फैलाती रहीं। इसी नफरत के कारण हिन्दू-मुस्लिमों के बीच बनी खाई और गहरी होती गई। जिसके फलस्वरूप अगस्त सन् 1947 को भारत का विभाजन हो गया। भारत विभाजन त्रासदी से लाखों लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। अलगाव और नफरत से भरे इस विषम वातावरण में एकता, प्रेम, भाईचारा और सद्भाव स्थापित करने की दिशा में साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है। इन्हीं साहित्यकारों में एक महत्वपूर्ण नाम भोष्म साहनी का है।

भीष्म साहनी ने विभाजन से पूर्व पंजाब के एक ज़िले और उस ज़िले के गाँवों में भड़की साम्प्रदायिकता की आग को अपने उपन्यास--"तमस" की पृष्ठभूमि बनाया है। उन्होंने "तमस" में जीवन की विषमताओं और विसंगतियों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालते हुए साम्प्रदायिक घृणा, अलगाववाद और विद्वेष की ज्वाला में भस्म होने वाले सामान्य मानव की विवशता को गहराई से उद्घाटित किया है।

भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगों को बढ़ावा देने वाली शक्तियों—अंग्रेज, हिन्दू महासभाई, मुस्लिम लीगो, कट्टरपंथी सिक्ख और अवसरवादी कैंग्रिस्सियों आदि की मनोवृत्ति और उनके वास्तविक रूप का यथार्थपरक चित्रण किया है। भारत विभाजन त्रासदी पर लिखे अन्य उपन्यासों में इतने सशक्त दंग से इस पहलू को उजागर नहीं किया गया। यह उपन्यास हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का अलग-अलग स्वतन्त्र अस्तित्व देखने वाले लोगों की मनःस्थिति और मनोवृत्ति को भी उद्घाटित करता है। वास्तव में भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में विभाजन पूर्व भारत की धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न साम्प्रदायिक मानसिकता का व्यापक धरातल पर सजीव चित्रण करने के साथ-साथ आधुनिकता की नई प्रवृत्तियों को भी रेखांकित किया है। वे उपन्यास में मानवीय सम्बन्धों की निरर्थकता और जटिलता के स्तर पर आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार करके समाज में सद्भाव, एकता, प्रेम और भाईचारा आदि उच्चतर मूल्यों का प्रचार-प्रसार करते हैं।

उपन्यास में जिस युग की कथानक की पृष्ठभूमि बनाया है, वह युग जटिलताओं से भरा हुआ है, क्योंकि एक ओर जहाँ कुछ लोग अपने अदम्य साहस और देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर मानव को मानव से जोड़ने वाले जीवन मूल्यों का प्रचार कर रहे हैं वहीं कुछ लोग इन उच्चतर जीवन मूल्यों का विरुद्ध प्रचार कर अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते हैं।

उपन्यास में एक ओर "अज़ीज़" और "हकीम जी" जैसे पात्र हैं जो देश

भक्ति की भावनाओं से प्रेरित होकर कांग्रेस और गांधी जी के उच्च आदर्शों और सिद्धान्तों में आस्था रखते हुए अविभाजित भारत की स्वतन्त्रता के लिए पारस्परिक सहयोग से आन्दोलन को आगे बढ़ाने में प्रयासरत हैं' तो वहीं "महमूद" जैसा पात्र भी है जो जमाते-इस्लामी और मुस्लिम लीग का झण्डा बुलन्द करके मुसलमानों को अलग राज्य पाकिस्तान बनाने के लिए एकजुट होकर संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। अपने इसी ख़्वाब को पूरा करने के लिए वह "अज़ीज़" और "हकीम जी" जैसे देश भक्त लोगों के प्रति कुत्सित भावना रखता है--"अज़ीज़ और हकीम हिन्दुओं के कुत्ते हैं 2। हमें हिन्दुओं से नफरत नहीं, इनके कुत्तों से नफरत है।" 1 हिन्दू धार्मिक पुनरुत्थानवादी संगठन साम्प्रदायिकता के इस विषय का निर्माण करने और मजबूत बनाने में मुख्य भूमिका अदा करते हैं---

"फैलाये घोर पाप यहाँ मुसलमीन ने।

नेअमत फलक ने छीन ली दौलत जमीन ने।" 2

हिन्दू मानसिकता को उत्तेजित करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व किया है पुष्यात्मा, वानप्रस्थी, मन्त्री जी, देवव्रत बोध राव लाला लक्ष्मीनारायण और महेन्द्र आदि थे। इन लोगों की साम्प्रदायिकता से ग्रस्त मानसिकता के कारण ही सदियों से साथ रहे रहे हिन्दु और मुसलमानों के बीच दीवार खड़ी हो जाती है। ये धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थों के कारण नफरत की दबी हुई चिंगारी को रगड़-रगड़ कर ऐसी ज्वाला में प्रज्वलित कर देते हैं जो मानवीय सन्दर्भों, भावनाओं और संवेदनाओं को जलाकार राख कर देती है।

लेखक ने आर्य समाज को विघटनकारी गतिविधियों का अ यथार्थपरक चित्रण करते हुए साम्प्रदायिक दंगों की पूर्व पृष्ठिका का बड़ा सूक्ष्म और हृदय विदारक दृश्य प्रस्तुत किया है। उपन्यास में "मुराद अली" का चरित्र उस वर्ग का यथार्थ है जो उस युग में और आज की अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए झूठासकों

1. भीष्म साहनी : तिमस, पृ०- 34

2. वही, पृ०-65

को कठपुतली बनकर विदेष और वैमनस्य के बीज बोते हैं। भीष्म साहनी ने "नटू" के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जो परिस्थितियों से विवशा होकर गुणित कार्य करने को तैयार हो जाता है। नटू अभावों और विवशाता के पाश में जकड़ा होने के कारण "मुराद अली" के कहने पर सुअर को मार देता है, लेकिन जब उसे इसका अहसास होता है कि शहर में तनाव इसी सुअर के कारण है, तो वह अपराध बोध की भावना से ग्रस्त हो जाता है। इसी अपराध बोध को पीड़ा से छुटकारा देने के लिए वह शराब पीता है लेकिन अनजाने में किये कुकृत्य से वह शराब पीकर भी छुटकारा नहीं पाता है। इसी लिए अपने जुर्म के रहस्य को अपनी पत्नी के सामने खोल देता है। नटू के चरित्र कुण्ठा और अन्तर्द्वन्द्व का उपन्यासकार जीवन्त एवं मनोवैज्ञानिक चित्रांकन करने में कामयाब रहा है।

उपन्यास में जरनैल सिंह नाम का पात्र भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह सन्को होते हुए भी सच्चा क्रांतिशी और देशभक्त है। वह जीवन भर समाज की एकता, देश की अखण्डता और देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करता रहता और अपने इन्हीं आदर्शों एवं सिद्धान्तों के कारण कट्टरपन्थी उग्रवादियों के हाथों मारा जाता है। वह जीवन भर देश की स्वतन्त्रता, साम्प्रदायिकता सदभाव के लिए संघर्षरत रहा और अन्त में इन्हीं आदर्शों के लिए जान देता है। लेकिन उसके आदर्श प्रतिक्रियावादी शक्तियों के पैरों के नीचे दबकर रह जाते हैं।

"तमस" में अन्धेरे और साम्प्रदायिक विभीषिका के अलावा हमें उम्मीद की किरन भी दिखाई देती है। "राजो", "जरनैल सिंह", आदि पात्र इस बात का बराबर अहसास कराते हैं कि मानवता अभी ज़िन्दा है। जब "राजो" हरनाम सिंह और बन्तो को अपने घर में शरण देती है तो उसकी बहू अर्क़रा शंका प्रकट करते हुए कहती है—"काफ़िरों की पनाह देने ओ। बहुमाडा करने ओ। मडद तुदाँ पुछसन।" ¹ काफ़िरों को पनाह दो। बहुत बुरा किया है। मर्द

आकर तुमसे पूछे। इसके बाद भी राजो विचलित नहीं होती है और हरनाम सिंह तथा बन्तो को गाँव से बाहर सकुशल भेजते समय उनका वह जेवर भी लौटा देती है जो उसके घर वाले लूट कर लाये थे। इस प्रकार भीष्म साहनी राजो के चरित्र के माध्यम से मानवता की मशाल को रोशान करके समाज की प्रेम और सद्भाव का संदेश देते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि "तमस" में जिस ज्वलन्त समस्या को उठाया गया है वह आज और भी अधिक मुखर हो गई है। धार्मिक, सामाजिक रुढ़ियाँ, राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ, अर्थिक विस्फोटियाँ, संकीर्ण विचारधाराएँ और बोरो की राजनीति उसे नये रूप में विकसित कर रही हैं। समाज में चेतना जागृत करनी होगी। मानव-मन प्रेम और सद्भाव के बीज बोने होंगे। तभी इस समस्या का निदान सम्भव है। "तमस" इस ओर विशेष रूप से संकेत करता है। अपने समग्र कलेवर में "तमस" एक उच्च कोटि का उपन्यास है, जिसमें भीष्म साहनी ने साम्प्रदायिक जैसी ज्वलन्त समस्या अंकन करते हुए मानवीय चरित्रों की दुर्बलता और ऊँचाइयों को सफलता के साथ रेखांकित किया है।

मुरदा घर §1974§
=====

उपन्यासकार जगदम्बा प्रसाद दीक्षित ने इस उपन्यास में शाहरी जीवन की एक पुरानी समस्या को इतने सशक्त ढंग से उठाया है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में इसे महत्वपूर्ण स्थान मिल गया। जिस वैश्यावृत्ति को प्रेमचन्द समाज के माथे पर कलंक मानते थे उसी समस्या को दीक्षित जो दूसरे ढंग से उठाते हैं। वह वैश्यावृत्ति का कारण आर्थिक शोषण मानते हैं। उनका यह मानना है कि जब तक सामाजिक ढाँचे को स नहीं बदला जायेगा तब तक इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं है मैना, पोपट, रोजो, चन्दू, हसीना, आरिफ, यमेली, सुमद्रा, काजी, छोकरी, और नयी छोकरी अपनी पेट की आग बुझाने के लिए जिस्म का पंधा करती है। यह उनकी विवशता है। मनुष्य

का सबसे बड़ा शोषक मनुष्य ही है जिसके मूल में अर्थ निहित है। एक बहुत बड़ा वर्ग अमानवीय और अनैतिक जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता है। वे सभी एक अच्छा जीवन जीना चाहती है। वे भविष्य को एक सपने के समान प्यार करती है। लेकिन मजबूरियों से बंधा एक टुट्टा कमीना बेधर्म और बेव्या जीवन है जिसे जीने के लिए ये अभिशाप्त है। मेरा पोपट से कहती है "क्या बोला था तू... धंधा करेगा और पेट भरेगा मेरा। अब धन्या करती में पेट भरती तेरा।" और पोपट उससे कहता है "मेरी जिन्दगानी में खाली एक बात है... तेरे को चाची को खोली ले के देना तेरे को इधर से ले जाना और मैं तेरे कूँ बोलना मैना आ रखें एक दिन मेरा टैम जरूर आयेगा ... तब तुम बोलना मेरे कूँ।"¹ पोपट की भी यही इच्छा है कि वह खोली में मैना के साथ रहे और वह मैना को घृणिता धन्ये से मुक्ति दिलाना चाहता है। अपनी परिस्थितियों सुधारने के लिए वह चोरी करता है। पोपट के अतिरिक्त समय में और भी संम्भ्रात चोर है। इसीलिए मैना हवलदार से कहती है, "पोलीस का लोक तो रंडी से भी खरब है। पैसा के वास्ते कुछ भी करेगा।"² परन्तु मैना को आवाज को सुनने वाला कोई नहीं है।

उपन्यासकार को महानगर के जीवन के बारे में अद्भुत जानकारी है। यही कारण है कि लेखक को सहानुभूति शोषित और पीडित वर्ग के प्रति है। कथ्य के अनुसार भाषा एक दूर तैवर में सामने आती है जो पात्रों तथा परिस्थितियों को महाराई से सामने लाने की अपूर्व क्षमता रखती है।

यह उपन्यास मानवीय सम्बन्धों को उजागर करने के साथ साथ निराशा और आशा जैसे विपरीत मनोबल को एक दिशा की ओर भी संकेत करता है। बच्चा के जन्म लेने से वैश्या दुःखी है कि कुछ दिनों तक धन्या बन्द रहेगा और खाने को रोटो कहाँ से आयेगी। लेकिन इसके साथ ही उसके मन में कहाँ यह बात उठ खड़ी होती है कि वह आदमी को जन्म दे रही है। आदमी

1. मुरदाघर, पृ०-२१

2. वही, पृ०-४३

जो कि श्रेष्ठतम कृति है, जिसको क्षमताएँ अपार हैं। वैश्या के ये विचार बहुत ही प्रभावशाली और प्रगतिशील हैं।

इस उपन्यास को बहुत बड़ी उपलब्धि चित्रात्मकता है, जो मानवीय संवेदना को बहुत बड़े धरातल पर उजागर करती है। दो कॉपती हुई टांगों का ऊपर उठाना और भयंकर पीड़ा से सहने के बाद भी अच्छे भविष्य का स्वप्न संजोय रखना मानना संघर्षों और भविष्य में उसको निष्ठा की ओर संकेत है। निःसन्देह मानवीय संवेदना के जिन पक्षों को यह उपन्यास उद्घाटित करता है वे अदभुत हैं। आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में "मुरदाघर" एक उपलब्धि है।

मछली मरी हुई-राजकमल चौधरी =====

यह राजकमल चौधरी का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक नूतन और अछूते विचार बोध की विविध सारणियों में घूमा है।

"लेस्वियन.....अर्थात् समलैंगिक यौनाचार में डूबी हुई स्त्रियों के बारे में, खासकर हिन्दी साहित्य में बहुत ही कम देखने को मिलेगा। इस उपन्यास में विषय नहीं है... विषय प्रस्ताव है.....। मात्र विषय प्रस्ताव।" व्यापारी निर्मल, पदमावत का परिचय ही लेखक के इस कथन की सत्यता को प्रमाणित करता है। शारीरी पदभावत, कल्याणों और प्रिया के जीवन का जो परिचय कृति के माध्यम से प्राप्त होता है उससे साफ जाहिर होता है कि जीवन की समग्रता का दृष्टिकोण यहाँ नहीं है। यहाँ अधूरा प्रस्तुतीकरण है।

निर्मल पदमावत की जीवन रेखाओं को रेखांकित करने में राजकमल को समलैंगिकता पर आधारित अपनी दो कहानियों के भावों को लेना पड़ा है। लेखक को परेशानी इस बात की है कि पुरुषों का समलैंगिक यौनाचार कानून की दृष्टि से गैर कानूनी है, किन्तु स्त्रियों की सतविषयक प्रक्रियाओं पर कानून का नियन्त्रण नहीं है। । (लेखक २७३ पृष्ठ) पुस्तक के लेखक मोरिस प्लासोवः

1. दिशाओं का परिचय (सं. ललिता शुक्ल) पृ०-५३

ने स्त्रियों को इस आजादी के विरोध में तवाल उठाया है ।

उपन्यास में एक प्रकार का अधूरापन सर्वत्र व्याप्त है चाहे वह शरीरी और प्रिया का सम्मेलनिक यौनाचार हो चाहे किसी बूढ़े व्यक्ति का ठंडा बिस्तर हो । गहराई की दृष्टि से कल्याणों का चरित्र अच्छा बन पड़ा है । यदि चरित्र में किसी चित्र के साथ लापरवाही दिखाई गई है तो वह है डा० रघुवंश का प्रारम्भ में प्रिया के प्रति पाठक खिंचता है किन्तु आगे चलकर शरीरी के चक्कर में लेखक ने निराशा किया है । विचार धारा बहुत हल्की है । यौनाचार में मस्त औरत {कल्याणों} की याद आती है । कारण है—कल्याणी टेन्शन भावना पक्षा इतमें जादि प्रबल है इसलिए विचार दबे हुए हैं । उपन्यास का उद्देश्य कामाशायल नहीं है अतः पाठक उबटा नहीं है । वह नारी जीवन का एक वह रूप देखता है जिसके ऊपर नारी ने पर्दा छाल रखा है ।

इस उपन्यास को हम अति यथार्थवाद का एक रूप कहेंगे । यद्यपि "मछली मरी हुई" के अंकुरण के मूल में जहाँ एक ओर लेखक की अनुभूति काम करती है वही दूसरी ओर औरतों से सम्बन्ध विशेष रखने वाली लेखिका सम्बन्धी पुस्तकें का अध्ययन भी सहायक होता है । शरीरी के गाने¹ को पढ़कर डाली के "लिम्प कावेज" और क्लाक्स के रेखांकन के साथ आन्ड्र ब्रिटन के "सायुबिलिफिआ" के विचार ध्यान में आते हैं ।

जीवन के सहज सम्बन्धों का भ्रम जाल यहाँ भी मिलता है । वैयक्तिक मनः क्रीड़ा की डायरी के जो पृष्ठ यहाँ उपस्थित किए गये हैं उनमें व्यक्तिगत बोझ और सहज अभिव्यक्ति का टकसाली रूप प उपन्यासकार को दौड़ में बहुत आगे कर देता है । फिर प्रश्न हो सकता है कि क्या जीवन की प्रत्येक घटना घटना का प्रत्येक रूप अन्तरंग नग्नता मदन प्रसंगों की सहज प्रवृत्तियों साहित्य का विषय

1. द व्याय आफ कैलकटा

ओह, ओह,

द वाय आफ कैलकटा

दे रिपली नो हाउ टु किस, दे नो हाउ टु किस...

ओह..ओह उपन्यास आफ ...दे रिपली नो ..

(उद्धृत द्वारा दिशाओं का परीक्षा, पृ०-44)

बना सकती है। अच्छा हो कि यह निर्णय कलाकार पर छोड़ दिया जाय
हों यह बात अनिवार्य है उपन्यास कार के लिए कि उसे इस बात की सम्झ हो
कि जीवन का-सच्चे जीवन का कौन सा रूप साहित्य का विषय बन सकता है।
"मछली मरी हुई" कृति को पढ़कर ऐसा लगता है कि उपन्यास कार को इसकी
खासी पहचान है।

इस काल छण्ड में और भी बहुत से महत्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित
हुए हैं, जिन पर प्रकाश नहीं डाला गया। लेकिन उन सभी महत्वपूर्ण
उपन्यासों पर चर्चा अवश्य की गई है,, जिनसे आज की जीवन सन्दर्भों, बदलते
हुए परिवेश, आदि पक्ष उदघाटित हो सकें और साथीत्तरी उपन्यासों की
मूल संवेदना स्पष्ट हो सके।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

प्रस्तुत अध्याय में हम इस शोध कार्य के निष्कर्षों और उपलब्धियों पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे । हमारे इस शोध प्रबंध का विषय है --- "साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन" जैसा कि पूर्ववर्ती अध्यायों में हम साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यासों की समस्याओं और उपलब्धियों पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर चुके हैं , हिन्दी-उर्दू भारत की समर्थ, सशक्त और जीवन्त भाषाएँ हैं । इन दोनों भाषाओं की अपनी समृद्ध साहित्यिक परम्पराएँ रही हैं । जीवन्त भाषा होने के कारण दोनों भाषाओं के साहित्यों की आधुनिक सर्जनात्मक विधाओं में पर्याप्त श्री वृद्धि हुई है । भारत के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों और परिवेश का दोनों भाषाओं में समान रूप से प्रभाव पड़ा है । दोनों भाषाओं में ही उपन्यास साहित्य ने एक सशक्त विधा के रूप में मानव जीवन की संवेदनाओं और संघर्ष का जीवन्त चित्रण किया है । वस्तुतः आधुनिक उपन्यास में जीवन की विभिन्न समस्याएँ और परिस्थितियाँ अपने रंग-रेशे से मानव को आत्मीय परिचित बनाती हुई अपनी समग्रता में मानव मात्र को नये सन्दर्भ प्रदान करती हैं । व्यक्ति के व्यक्तित्व और समाज सापेक्ष घटनाओं के आकलन और मानवीय जिजीविषा, संघर्ष, संघर्ष एवं टूटने बिखरने की पूर्ण कथा को आधुनिक उपन्यास में सशक्त अभिव्यक्ति मिली है ।

जीवन की चतुर्मुखी छाया, मूल्यों के संक्रमण बनते-बिगड़ते रिश्ते, उनकी जटिलता, विविध मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं आर्थिक सभ्यता के अटूट गवाह के रूप में उर्दू-हिन्दी उपन्यास यथार्थ के व्यापक फलक पर मानव की अस्मिता पर लगे आधारभूत सवालों का सार्थक जवाब खोजते हुए बदलती युगीन मानसिकता और उसके परिणामों की ओर इंगित करने में पूर्ण सफल रहे हैं । मानव चिंतन

और उसके विविध आयामों को उर्दू-हिन्दी उपन्यास में एक नया स्वर प्राप्त हुआ और उसमें गतिशील मानव समाज का वैविध्य उभरकर सामने आया है।

चिन्तन फलक में परिवर्तन होने के साथ ही साथ उर्दू और हिन्दी उपन्यासों के स्वर में भी परिवर्तन आते रहे हैं। दोनों भाषाओं का उपन्यास साहित्य युगानुरूप बदलाव के साथ विभिन्न मोड़ों से गुजरा और विभिन्न दिशाओं का साक्षी बना। जैसाकि हम उल्लेख कर चुके हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात् का काल कुंठा, संक्रांत और निराशा का रहा है। जहाँ एक ओर राष्ट्र विकास-पथ की ओर उन्मुख हुआ, वहीं दूसरी ओर भ्रष्टाचार, अनौति, दमन और स्वार्थों के संघर्ष ने अनेक राष्ट्रव्यापी समस्याओं को जन्म दिया।

तन् साथ तक आते-आते साम्प्रदायिकता की विभीषिका क्रूरतम रूप धारण कर चुकी थी और इसका प्रमुख कारण जातिवाद और धर्म की राजनीति का आधार बनाना था। प्रांतीयता और भाषा आन्दोलन अपने उत्कर्ष पर थे। शहरीकरण और यन्त्रीकरण की प्रक्रिया निरन्तर प्रवाहित थी। शिक्षा, व्यापार, राजनीति, धर्म और संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में स्पष्ट खोजलापन परिलक्षित किया जा रहा था। इन परिवर्तनों और सामाजिक विघटन के प्रभाव से हिन्दी-उर्दू उपन्यास साहित्य भी अछूता न रह सका, फलस्वरूप उसमें जहाँ विद्रोह के नये स्वर मुखरित हुए, वहीं दूसरी ओर नवीन प्रतिमानों की स्थापना पर भी बल दिया गया। इस प्रकार स्वतंत्रता के नूतन प्रवाह चिंतन की नयी दिशा और वैचारिकता के नवीन सोपानों ने, नई परिस्थितियों और नये सामाजिक परिवेश ने साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यासकारों को एक नया फलक प्रदान किया।

साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यास "मोहभंग" के परिणामस्वरूप जनसामान्य के जीवन के प्रमाणिक दस्तावेज के रूप में सामान्य जीवन का यथार्थ सिद्ध हुआ। इस प्रकार साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यास व्यक्ति की अवस्था मनोवृत्तियों की गाथा सामाजिक संजटिल यथार्थ और समकालीन जीवन खण्डों या सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों एवं मूल्यों का स्पष्टीकरण करता है।

वह मानवीय सम्बोधनों, घटनाओं एवं क्षणों को नए अर्थों में परिभाषित करते हुए मानव मूल्यों को नई मर्यादा स्थापित करने का प्रयास करता है ।

इस युग के हिन्दी और उर्दू दोनों ही उपन्यासकारों पर पाश्चात्य दार्शनिक चिंतन का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा । यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद, मानवतावाद और व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रवृत्तियाँ इस युग के हिन्दी-उर्दू उपन्यासकारों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ रही हैं । यही कारण है कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासकार कटु यथार्थ का सामना करते हुए पलायन का रास्ता न पकड़ कर संघर्ष को महत्व देते हैं । तटस्थ सामाजिक दायित्वबोध के द्वारा व्यक्ति और समाज के नये सम्बन्ध सूत्रों की तलाश करके उपन्यासकारों ने मानवीय सम्बन्धों को एक नये परिदृश्य में देखने का प्रयास किया । परिणामस्वरूप विभाजन, मोहभंग, यांत्रिकता, विषमताएँ, विसंगतियाँ, नैतिक एवं उच्चतर जीवन मूल्यों के ह्रास और राजनीतिक स्वार्थों के मध्य फँसे व्यक्ति को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयत्न करना दोनों भाषाओं के उपन्यासों के कथानक की मुख्य पृष्ठभूमि बना है । कुछ लेखकों ने अस्तित्ववादी दृष्टिकोण का अपनाने के बाद भी जीवन की सम्पूर्णता के माध्यम से परिवेश को समझने का गम्भीर प्रयास किया है और यही कारण है कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासकार प्राप्त सत्य का कलात्मक सत्यता के साथ प्रयोग करने में कामयाब रहे हैं । आधुनिक युग में व्यक्ति-चेतना जीवन के समस्त क्रिया-कलापों की आधार बन गई । हालाँकि साहित्यकार प्रारम्भ से ही व्यक्ति-चेतना को अपने कथ्य का आधार बनाता रहा है, लेकिन आधुनिक युग ~~काल~~ में इसके विभिन्न स्तरों और सोपानों को हिन्दी-उर्दू उपन्यासकारों ने अपना बनाया । आधुनिक उपन्यास साहित्य विशेषतः साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यास व्यक्ति चेतना का प्रतिबिम्ब बन कर उभरा । वास्तव में, आज़ादी के उपरान्त एक ऐसे युग का प्रारम्भ हुआ जिसमें एक ओर स्वतंत्रता के सही अर्थों की तलाश किया जा रहा था तो दूसरी ओर सत्ता और राजनीति के प्रभुत्व के लिए संघर्ष । अपने निहित स्वार्थों के कारण

हो समस्त देश में भाई भतीजावाद, अलगाव और भ्रष्टाचार पनपने लगा । अलगाववादो प्रवृत्तियाँ, बेकारी, गरीबी आदि विसंगतियों के जोर पकड़ने के कारण आधुनिक भारतीय राष्ट्र का कर्णधार युवा वर्ग भी अलगाव, गरीबी, बेकारी से संक्रांत होकर अनुशासनहीन बन गया । परिणामस्वरूप सन् 1960 ई० तक आते-आते देश में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई । इन युगीन परिस्थितियों ने व्यक्ति चेतना को गहरे स्तर पर प्रभावित किया । व्यक्ति चेतना, पूँजीवादी, मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय खानों में बंट कर रह गई है और व्यक्ति दुहरे स्तर पर जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो गया । साठोत्तर हिन्दी-उर्दू उपन्यासों ने व्यक्ति चेतना को अपना प्रमुख कथ्य बनाकर उसके विविध रूपों का दिग्दर्शन कराया । परम्परा और प्राचीन मूल्यों से सम्बद्ध रहते हुए भी वह नूतन और विकासशील परम्परा का सृष्टा बना ।

सन् 1960 के उपरांत सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश, बदलते हुए रिश्ते, परिवर्तित होती हुई परिस्थितियाँ, जीवन मूल्यों और प्रतिमानों के फलस्वरूप हिन्दी उपन्यास साहित्य में विशेष परिवर्तन आया । यह परिवर्तन हमें केवल शिल्प और शैली के स्तर पर ही नहीं दिखायी देता है अपितु कथ्य और चिन्तन की दृष्टि से भी गुणात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है । यही कारण है कि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास नई दिशाओं का साक्षी बना और विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं और नवीन मूल्यों के ज्ञानात्मक संवेदन ने उसको परिधि तथा फलक को विस्तृत रूप प्रदान करके उसे नये आयामों से परिचित कराया ।

साठोत्तर हिन्दी-उपन्यास टूटते-जुड़ते आदमों की न्यति, बनते-बिगड़ते रिश्तों एवं मूल्यों, नई परिस्थितियों और नये परिवेश की आस्थाओं का दस्तावेज कहा जा सकता है । इस युग के उपन्यासकारों ने युगीन मानव के अन्तःस्तर की संवेदनाओं और युगीन ग्रामीण, शहरी जीवन की विषमताओं और विसंगतियों को यथार्थ के धरातल पर अनेक जीवन्त छाया चित्रों का निर्माण

करते हुए उपन्यास-साहित्य और जीवन दोनों को ही नई ऊर्जा और अर्थवत्ता प्रदान की है ।

सन् साठ के पश्चात् हिन्दी उपन्यास-साहित्य के समान ही उर्दू उपन्यास-साहित्य में भी गुणात्मक परिवर्तन आये, ये परिवर्तन न केवल शिल्प और शैली के सार पर दिखाई देते हैं बल्कि विषय और चिन्तन के स्तर पर भी दृष्टिगोचर होते हैं । साठोत्तरी उर्दू उपन्यास ने विभिन्न मानवीय समस्याओं और नये मूल्यों को विस्तृत रूप से अभिव्यक्त करने के साथ-साथ ही नव आयामों से परिचित भी कराया । हालाँकि इस युग में उर्दू भाषा में कुछ ऐसे उपन्यासों का भी सृजन हुआ जिनमें मूल्यों, प्रवृत्तियों और शिल्प की दृष्टि से एक रूपता थी । इसका मुख्य कारण उर्दू के प्रसिद्ध उपन्यास "आग के दरिया" के प्रभाव को स्वीकार किया जाता है । हालाँकि इस युग में उर्दू के अधिकांश श्रेष्ठ उपन्यास पाकिस्तान में लिखे गये । पाकिस्तानी समाज की भी लगभग वही परिस्थितियाँ थीं जो भारतीय समाज की । हाँ वहाँ कुछ उपन्यासों में एक अपूर्व दायित्वबोध, अशान्ति और अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास बराबर दिखाई देता है । इसका मुख्य कारण भारत विभाजन त्रासदी के पश्चात् पुरानी सभ्यता, विभिन्न कारुणिक और भयावह घटनाओं की भीड़ में अपने गुमशुदा समाज की तलाश थी । इसीलिए पाकिस्तान में नये सांस्कृतिक मूल्यों की तलाश का कार्य बड़े पैमाने पर किया गया ।

साठोत्तर उर्दू उपन्यास में वे वैचारिक, तकनीकी और प्रवृत्तिगत बदलाव भी आये जो भारत की अन्य भाषाओं और समस्त संसार में हो रहे थे । अधिकांश उर्दू उपन्यासकारों ने शहरी सभ्यता और शहरों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को ही अपने कथानक की पृष्ठभूमि बनाया। ~~कुछ~~ कुछ उपन्यासकारों ने ग्रामीण परिवेश और समस्याओं को अपने कथ्य का केन्द्र बिन्दु बनाया । लेकिन ग्रामीण परिवेश पर लिखे गये उपन्यासों में जन-साधारण की वास्तविक तस्वीर न होकर जागीरदाराणा घरों से सम्बन्धित पात्रों की मनोभूमि का चित्रण अधिक था ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासकार समाज से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं और यही कारण है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में साठोत्तरी सामाजिक यथार्थ और परिवेश का जीवंत चित्रण किया है। साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में समान प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हुई हैं। तमस, आधा गाँव, अलग-अलग वैतरणी, लोटे हुए मुसाफिर, बस्ती, उदास नस्लें, लहू के फूल, आँगन, तलाशे बहारों आदि उपन्यास विभाजन और साम्प्रदायिक समस्या से ग्रस्त समाज की मनःस्थिति को हमारे सामने प्रकट करते हुए, इस तथ्य पर विशेष रूप से प्रकाश डालते हैं कि साम्प्रदायिक समस्या सामाजिक कम बल्कि राजनीतिक अधिक है। यही कारण है उपर्युक्त उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के मूल में जाकर उस पर गहरी चोट की गई है।

अधरे बन्द कमरे, वे दिन, बेघर, अपने-अपने अजनबी, बैसाखियों पर टिकी इमारत, बस्ती, दूसरी बार, उदास नस्लें आदि हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में उस निरर्थकता बोध, उच्च, अजनबियत को चित्रित किया गया है जिसने निर्मम और अमानवीय व्यक्तिवाद को जन्म दिया। वास्तव में, आर्थिक समस्याओं, औद्योगिक पूँजीवादी वितरण प्रणाली से जूझता हुआ मध्यमवर्गीय आदमी टूटकर रह गया। परिणामस्वरूप एक ऐसे समाज का जन्म हुआ जो संस्कृतिहीन और उच्चतर जीवन मूल्यों विहीन था। अधरे बन्द कमरे, वे दिन, आपका बंटो, जिन्दगीनामा, मछली मरी हुई, उसका बचपन, दूसरी बार, अलीपुर का सली, पहला और आखिरी खत, राजा गिद्ध और बस्ती आदि हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में यौन सम्बन्धों में असहजता, ठण्डापन, कुण्ठा को उजागर किया गया है तो राग दरबारी, वे दिन, आपका बंटो, बैसाखियों पर टिकी इमारत, स्याह आइने, आबला पा आदि हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में परिवार और व्यक्ति इकाई बदलते हुए परिवेश में के अन्तर्विरोधों और मानवीय पीड़ा को भी स्वर प्रदान किया गया है।

राग दरबारी, महाभोज, बस्ती, आखिरी शब के हमसफर, उदास नस्लें, खुदा को बस्ती आदि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यासों में राजनीतिक

विसंगतियाँ, विद्रूप को आत्मसात् किया गया है तो एक चादर मैली सी, शब्गुजीदा, राग दरबारी, आधा गाँव, अलग-अलग वैतरणी, जल टूटता हुआ, धरती धन न अपना आदि उपन्यासों में बदलते हुए ग्रामीण परिवेश में आर्थिक शोषण, सामाजिक पतन, राजनीतिक विसंगतियों और स्पर्धा को चित्रित किया गया है ।

निष्कर्षतः हम अंत में कह सकते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी^{-उर्दू} उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में एक ऐसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आत्मसात् किया जो सामाजिक यथार्थ, उच्चतर जीवन मूल्यों, व्यक्तिगत बोध, सामाजिक वर्जनारै, यौन कुण्ठारै, आर्थिक स्वायत्ता और सार्थकता की तलाश आदि को परिभाषित करने के साथ-साथ मानव मन की जटिल संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम रहा है । निःसंदेह साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यास को ये महान उपलब्धियाँ हैं । इस युग के उपन्यासकारों ने जन-संघर्ष तथा जन आकांक्षाओं को अपने कथानक का केन्द्र बिन्दु बनाया ।

अंत में हम कह सकते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी-उर्दू उपन्यास में जीवन को निकट से देखने और परखने का सफल प्रयास किया गया है ।

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ सूची

=====

॥अ॥ उर्दू ग्रंथ

1. प्रो० अब्दुस्सलाम : उर्दू नाविल बीसवीं सदी में ॥1973॥, उर्दू एकेडेमी
सिन्ध-कराची
2. अली अब्बास हुसैन : नाविल की तारीख व तन्कीद ॥प्र० सं०॥, इण्डियन
बुक डिपो, लखनऊ ।
3. अब्दुल्ला हुसैन : उदास मस्जिदें ॥1973॥, उर्दू पब्लिशर्स, लखनऊ
4. जनवर सज्जाद : खुशियों का वाग ॥प्र० सं०॥,
5. आले जहमद गुरुर सं० : उर्दू किवान ॥1973॥, उर्दू विभाग, अलीगढ़
मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ ।
6. इस्मत चुगताई : एक कतरे सू ॥1976॥, फन और फनकार, बम्बई
7. " " : टेडी लकीर ॥1968॥, किताबकार, लखनऊ
8. " " : मासूमा ॥1962॥, हाली पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
9. इन्तेज़ार हुसैन : बस्ती ॥1980॥, मकतबा जामिया, नई दिल्ली
10. कृशन चंदर : चोर बाज़ार ॥प्र० सं०॥, बम्बई
11. डा० कमर रईस : तलाशो तवाजुन ॥1968॥, इदारे, दिल्ली ।
12. " " : तन्कीदी तनाजुर ॥1978॥, एजुकेशनल हाउस, अलीगढ़
13. कुर्रतुल एन हैदर : मेरे भी सनम खाने,
14. " " : सफ़ीने गमे दिल ॥1955॥, नसीम बुक डिपो, लखनऊ
15. " " : आग का दरिया ॥प्र० सं०॥, मकतबा उर्दू अदब, लाहौर
16. " " : आग़िरी शब के हमसाफ़र ॥1979॥, अल्बी बुक डिपो,
लखनऊ
17. " " : कारे जहाँ दराज है-1 ॥1977॥, फन और फनकार,
बम्बई

18. कुरैतुल सन हैदर : कारे जहाँ दराज है-2 §1979§, फल और फलकार,
बम्बई
19. " : चार नावेलेट §1981§, एजुकेशनल बुक हाउस, अलीगढ़
20. ख्वाजा अहमद अब्बास : इन्कलाब §1975§, बम्बई
21. खदीजा मस्तूर : अँगिन §1983§, एजुकेशनल हाउस, अलीगढ़
22. " : ज़मीन §1986§, हिमालय बुक हाउस, अलीगढ़
23. खलीलुर्रहमान आज़मी : उर्दू में तरक्की पसंद तहरीक §1972§, अंजुमन तरक्की-
ए-उर्दू हिन्द, अलीगढ़
24. गोपीचंद नारंग : उर्दू अफ़साना रिवायत और मसायल §1981§, एजुकेशनल
पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
25. जमीला हाशमी : तलाशे बहारों §1986§, उर्दू एकेडेमी सिन्ध-कराची
26. " : चेहरा ब चेहरा खबर §प्र० सं०§ राइटर्स बुक क्लब, लाहौर
27. " : दशते सोज़ §1983§, राइटर्स बुक क्लब, लाहौर
28. जीलानी बानो : ऐवाने गुज़ल §1986§, नाविलस्तान, नई दिल्ली
29. नुजहत समोउज्जमा : उर्दू अदब में तारीखी नाविल का इस्तेफ़ा §1982§,
नामी प्रेस, लखनऊ
30. मुमताज़ मुफ्ती : अलीपुर का एली §1961§
31. डा० मौ० अहसन फारूकी : उर्दू अदब की तक्कीदी तारीख §1976§,
इदाराये फरोगे उर्दू, लखनऊ
32. फारुख ख़ालिद : स्याह आइने §1977§
33. युसुफ सरमस्त : उर्दू नाविल 20 वीं सदी में §1973§ नेशनल बुक डिपो, हैदराबाद
34. बानो कुदसिया : राजा गिद्ध §1981§, संगेमील पब्लिकेशन्स
35. रज़िया फ़सीह अहमद : आबला पा §1965§, मक़तबा इत्योफ़न, दिल्ली
36. डा० रज़िया मुलतान : उर्दू अदब की तरक्की में ख़ातीन का हिस्सा §प्र० सं०§
हैदराबाद
37. राजेन्द्र सिंह बेदी : एक चादर मैली सी, मक़तबा ज़ामिया, दिल्ली
38. प्रो० बेकार अज़ीम : दास्तान से अफ़साने तक §1980§, एजुकेशनल बुक
हाउस, अलीगढ़

39. शौकत सिद्दीकी : खुदा की बस्ती, एजुकेशनल बुक हाउस, अलीगढ़
40. सालिहा आबिद हुसैन : अजुरा §1958§, संगम किताबकार, दिल्ली
41. सुहेल बुखारी : उर्दू नाविल निगारी §1973§, अलहमरा पब्लिशर्स, दिल्ली
42. हयातुल्ला अंसारी : लहू के फूल §प्र० सं०§
43. हासन अय्यूब : उर्दू नाविल प्रेमचन्द के बाद §1978§, उर्दू पब्लिशर्स, लगनऊ

पत्र-पत्रिकाएँ

1. अल्फाज §मार्च-अप्रैल 1981§, अलीगढ़
2. आजकल §जनवरी व जून 1981§, दिल्ली
3. झंझार §अगस्त 1978§, बम्बई
4. गुल्शन - अंक 11 §1980§, बम्बई
5. मखार §1982§, बम्बई
6. सर्वरा- अंक-25, लाहौर

§आ§ हिन्दी ग्रंथ

1. अमरकांत : सूखा पत्ता §प्र० सं०§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली--प्रकाशन संस्थान, दिल्ली-1979
2. अमृत राय : आदि केपनी का प्रकाशन §प्रकाशः§
3. अमृत लाल नागर : अमृत और विष §1971§, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

4. अमृत लाल नागर : अमृत और विष §प्र० सं०§

§प्र० सं०§, पब्लिकेशन ब्यूरो, केंद्र गढ़, पंजाब युनिवर्सिटी 1979

6. अनेक : अपने-अपने अचनवी 1970, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

8. इन्द्रनाथ मदान : आज का हिन्दी उपन्यास §1966§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
9. उषा प्रियवंदा : पचपन खंभे लाल दीवारें §1961§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
10. " : स्कोगी नहीं राधिका §प्र0सं0§, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
11. डॉ0 ओंकारनाथ श्रीवास्तव : हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष §प्र0सं0§, राजकमल प्रकाशन 1969
12. डा0 कुमार विमल : अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य §प्र0सं0§, पराग प्रकाशन, पटना 1965
13. डॉ0 कुवरपाल सिंह : हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना §प्र0सं0§, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली
14. कमलेश्वर : लौटे हुए मुसाफिर §प्र0सं0§
15. कृष्णा सोबती : जिन्दगी नामा §द्वि0सं0§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1983
16. " : सूरजमुखी अधिरे के §प्र0सं0§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1981
17. " : मित्रो मरजानी §प्र0सं0§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1979
18. काशीनाथ सिंह : अपना मोर्चा §प्र0सं0§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
19. त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ §प्र0सं0§, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी 1966
20. गुलाबराय : काव्य के रूप §1958§, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
21. घनश्याम मधुप : हिन्दी लघु उपन्यास §प्र0सं0§, राधाकृष्णा प्रकाशन, दिल्ली
22. चण्डी प्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन §प्र0सं0§, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर 1962
23. जगदम्बा प्रसाद दीक्षित : गुरदाघर 1974, राधाकृष्णा प्रकाशन, दिल्ली
24. जगदीश चन्द्र : धरती धन न अपना §1972§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
25. डॉ0 नोन्द्र : मानविकी परिभाषाकोश §साहित्य खण्ड§ 1965, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
26. डॉ0 नरेन्द्र मोहन : आधुनिक हिन्दी उपन्यास §प्र0सं0§, दिल्ली मैकमिलन 1975

27. नरेश मेहता : यह पथ बन्धु या §प्र०सं०§, 1962
28. डॉ० नवल किशोर : आधुनिक हिन्दी उपन्यास और मानवीय अर्थवत्ता §प्र०सं०§
संस्थान प्रकाशन, नयी दिल्ली 1977
29. निर्मल वर्मा : वे दिन §1964§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
30. डा० बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास §1978§,
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
31. बदीउज्जमा : एक घूँट की मौत
31. डॉ० बलभद्र तिवारी : आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका §प्र०सं०§,
नवलकिशोर एण्ड संस, वाराणसी 1965
32. डॉ० बी० पद्मिनीता रमैया : गाँधी और गाँधीवाद
33. भीष्म साहनी : कड़ियाँ §1970§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
" " : तमस §1973§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
34. डॉ० मनमोहन सहगल : हिन्दी उपन्यास के पद चिह्न §1973§, सूर्य
प्रकाशन, दिल्ली
35. ममता कालिया : बेघर, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद 1976
36. मन्नू भण्डारी : आपका बंटी, अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली
37. " " : महाभोज राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 1984
38. मोहन राकेश : जंधेरे बन्द कमरे §प्र०सं०§ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
39. डॉ० मुकुन्द द्विवेदी : युग चेतना और पाठकीय संवेदना §1970§, लोक
भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
40. डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण §प्र०सं०§
41. डॉ० योगेन्द्र बख्शी : हिन्दी पंजाबी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
§1967§ प्रबल प्रकाशन, दिल्ली
42. डॉ० लक्ष्मीसागर वाज्ज्णीय : तृतीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास
§प्र०सं०§
43. डॉ० रणावीर राग्रा : हिन्दी साहित्य में चरित्र-चित्रण का विकास §प्र०सं०§

44. राम अषध द्विवेदी : साहित्य सिद्धान्त
45. रामदश मिश्र : हिन्दी उपन्यास एक शीघ्रगाथा §1980§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
46. रामगोपाल चौहान : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास §प्र0सं0§
47. डॉ० रामकुमार वर्मा : साहित्य शास्त्र §प्र0सं0§
48. डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी : हिन्दी साहित्य का इतिहास
49. राजेन्द्र यादव : सारा आकाश, अक्षर प्रकाशन दिल्ली 1972
50. " " : अनदेखे अनजाने पुल, पाववां सं०, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली 1984
51. राही मासूम रज़ा : आधा गाँव §1966§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
52. राजकमल चौधरी : मछली मरी हुई
53. रमेश बक्षी : बैसाखियों पर टिकी इमारत
54. डॉ० ललित शुक्ल : दिशाओं का परिवेश §1968§, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
55. श्रीलाल शुक्ल : रागदरबारी §1968§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
56. श्रीकांत वर्मा : दूसरी बार , अक्षर प्रकाशन, दिल्ली 1968
57. डा० श्यामसुन्दर दास : अस्तित्ववाद और द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य
58. शिवप्रसाद सिंह : अलग-अलग चेतना की लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1967
59. " " : आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद
60. शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद, मैकमिलन, दिल्ली 1970
61. शानी : काला जल §प्र0सं0§, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
61. शारदा अग्रवाल : द्विवेदी युगीन हिन्दी उपन्यास §1967§, वि०वि० प्रकाशन, लखनऊ
62. डॉ० शैलेश जैदी : प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा : नव मूल्यांकन §1978§, यू०पी०, हाउस, अलोगढ़
63. डॉ० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास §1965§, अशोक श, प्रकाशन, दिल्ली

64. डॉ० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास §1965§, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
65. डॉ० सुमित्रा त्यागी : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन §प्र०सं०§, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
66. डॉ० सुखदेव शुक्ल : हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता §प्र०सं०§ अनुसंधान प्रकाशन कानपुर 1966
67. डॉ० हेमन्त कुमार पानेरी : स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण §1974§ संधी प्रकाशन, उदयपुर

पत्रिका

परिषद् पत्रिका, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना 1972

डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद §प्र०सं०§